chapter- 1

प्रथम अध्याय

"भूमिका"

अध्याय–1

1.1 'दलित' शब्द का अर्थ :–

भारत में वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक 'दलित'शब्द पर विभिन्न मत–मतांतर प्रवर्तमान रहे हैं। भारत में आठ दशक पूर्व से 'दलित' शब्द का प्रयोग प्रारंभ हुआ है। आरंभ से लेकर अब तक इस शब्द की व्याप्ति को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हैं। 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है। विभिन्न शब्द कोशों में दलित शब्द का अर्थ इन रुपों में मिलता हैं :

1."दल–(अक) विकसना ,फटना, खण्डित होना,द्विधा होना।
दल–(सक) चर्ष करना,टुकड़े करना, विदारना।
दल–(नपृ.) सैन्य,लश्कर,प,त्र,पत्ती।"1

2. 'दलित' शब्द 'दल' धातु+कुत प्रत्यय से मिलकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–

"टूटा हुआ,चीरा हुआ,फाड़ा हुआ,टुकड़े–टुकड़े किया हुआ,फैलाया हुआ।"2

दलित समाज या दलित वर्ग भारतीय समाज का वह भाग है जिसे अभिजात्य वर्ग के लोगों ने सदियों से दबाकर रखा। भारतीय समाज व्यवस्था के संदर्भ में 'दलित' शब्द का अर्थ है–ऐसा जन समुदाय जिसे प्राचीनकाल से तथाकथित सभ्य सवर्ण समाज ने दबाकर रखा है, जिसे धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक सुविधाओं से वंचित बनाये रखा। दलित शब्द को व्यापक अर्थ में समझने के लिए यहाँ भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली के अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर का मंतव्य अधिक ध्यान देने योग्य है–उनके अनुसार दलित शब्द गूँगा नहीं है, वह स्वयं अपनी परिभाषा देता है। उनके द्वारा दी गई परिभाषा बहुत ही चोटदार और सटीक है। उन्हीं के शब्दों में–

> **"दलित शब्द मूक नहीं है, यह अपनी परिभाषा स्वयं उद्‌भाषित करता है। दलित वह है जिसका दलन किया गया हो, शोषण किया गया हो, उत्पीड़न किया गया हो। उपेक्षित,अपमानित,प्रताड़ित,बाधित और पीड़ित व्यक्ति भी दलित की श्रेणी में आते हैं। इस तरह 'दलित' शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जतिवाद से अभिशप्त दलित, शोषित, उपेक्षित व उत्पीड़ित व्यक्ति आते हैं, वहीं सदियों से प्रताडित,उपेक्षित,अपमानित,शोषित, सामाजिक बंधनों में बाधित एवं बच्चे भी इसी श्रेणी में शामिल हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही हैं।"3**

उपरोक्त मंतव्य से हमें 'दलित' शब्द का व्यापक स्तर पर अर्थ देखने को मिलता है, उसमें छुआछूत या वर्ण व्यवस्था से भी आगे तमाम उपेक्षित, वंचित, शोषित, पीड़ित,गरीब, मजदूरी, पर जीवन बिताने वाले लोगों को शामिल किया गया है।

'दलित' शब्दकोशकारों की दृष्टि में :–

1. संस्कृत भाषा में :–

शुद्र चौथे वर्ण का पुरुष (कहा जाता है कि वह पुरुष या ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न हुआ–'पदभ्यां' शुद्रो अजायत:') आर्यों के चार मुख्य वर्णों में से अंतिम वर्ण का पुरुष।4

2. हिन्दी भाषा में:–

संस्कृत शब्दकोश की तरह हिन्दी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का अर्थ– विनष्ट किया हुआ ऐसा ही दिया हुआ है, जैसे–
"दलित(वि सं.)" स्त्री दलिता

1."मसला हुआ, मर्दित
2.दबाया हुआ, रौंदा या कुचला हुआ।
3.खण्डित
4.विनष्ट किया हुआ"5

डॉ.भोलानाथ तिवारी नें 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है–

1."दलित–कुचला हुआ ,मर्दित, मसला हुआ, रौंदा हुआ,
2.पस्त हिम्मत, हतोत्साह,
3.अछूत, जनजाति, डिप्रेस्ड क्लाइ।"6

अंत्यज– अंतिम वर्ण में पैदा हुआ शुद्र। 7

अस्पृश्य– जो छूने योग्य न हो। 8

दलित शब्द का अर्थ मानक हिन्दी शब्द कोश में इस प्रकार दिया गया है–

"दलित (भूतकृदंत) (संदल + क्त)
1.जिसका अर्थ दलन हुआ है।
2.जो कुचला, दला, मसला या रौंदा गया हो
3.टुकड़े–टुकड़े किया हुआ।चूर्णित।
4.जो दबाया गया हो। जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो। हीन अवस्था में पड़ा हुआ।
5.ध्वस्त या नष्ट किया हुआ"। 9

श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि ने शब्द को इस रुप में परिभाषित किया है–

"दलित शब्द भाषागत,जातिवाद और क्षेत्रवाद को नकारता है और पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।"10

डॉ. पुरुषोत्तम सत्य प्रेमी के शब्दों में–

> **"समता के अस्मितादर्शी, प्रगतिशील समाज के मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्षशील लोग ही दलित हैं। आज पिछड़े वर्ग,अनुसूचित जाति,जनजाति ही अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत हैं,इसलिए इनके मत से हम सहमत हैं।"[1]**

दलित शब्द की व्याप्ति आज मीडिया तथा समाचार पत्र आदि भी स्वीकार कर चुके हैं, परंतु इस शब्द का चलन भारत में 1919 के लगभग आरंभ हुआ। पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट में इस शब्द का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि–

> **"ब्रिटिश सरकार के शासन के दौरान मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिफार्मेस द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग के लिए अनेक सरकारी निकायों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया तथा उसी अनुरुप 1919 में सरकारी भाषा में दलित वर्ग सर्वग्राही शब्द बन गया था, जिसमें अनुसूचित जन जातियाँ तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोग शामिल थे।"[12]**

अतः ब्रिटिश शासन काल में ही दलित शब्द शुद्रों के लिए प्रयुक्त होना मान्य हो गया था।

3. <u>गुजराती भाषा में:–</u>

दलित– **"कचडायेलु, दलायेलु, पीडित, डिप्रेस्ड"[13]**
(कुचला हुआ, चूर्णित)

दमित– **"जेनु दमन करवामां आव्युं छे तेवुं"[14]**
(जिसका दमन किया गया हो वह)

पददलित– **1."पग निचे कचडायेलु**
(पैरों तले कुचला हुआ)
2.नीची कक्षानुं गणवाने कारणे परेशान थयेलुं"[15]
(निम्नस्तर में गिनती के कारण जो त्रस्त हुआ हो वह)

<u>शोषित</u> – "सूकववामां आवेलुं, चूसवामां आवेलुं, कचडायेलुं, पजवायेलुं"[16]
(सूखा किया हुआ, चूसा हुआ, प्रताडित किया हुआ)

> **"1937–38 में गुजराती साहित्य परिषद के 13 वें अधिवेशन में प्रमुख स्थान से श्री कनैयालाल मुनशी ने अपने प्रवचन में दलित शब्द का प्रयोग किया है।"[17]**

> **"साथ ही मेघाणी के 'युगवंदना' (1935) काव्य संग्रह में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।"[18]**

इस प्रकार गुजराती साहित्य में 1935 में 'दलित' शब्द मिलता है। आज संविधान के दर्शाए गए 'अनुसूचित जाति' के समाज–समूल के लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

4. <u>अंग्रेजी भाषा में:–</u>

1.दलित–Dalit (s) Adsj
(1)broken or turn to pieces
(2)crushed,ground: trompled
(3)oppressed.19

2.शोषित–Sosit (s) M
(1)made dry
(2)absorbed
(3)exploited.20

3.अछूत–A.chut
(1)Not to be touched, untouchable
(2)M. an untouchable (caste person) ca+u>m
improvement of the condition of the scheduled caste"21

4.अंत्यज–Adj.&M.born in the lowest caste(s)Untouchable.22

5.पददलित–Downtrodden 23

6.अस्पृश्य,अछूत–Untouchable. 24

"सर्व प्रथम फ्रेंच भाषा और बाद में अंग्रेजी शब्द डिप्रेस्ड का उपयोग सरकारी भाषा में इस वर्ग के लिए किया गया था,जिसका हिन्दी रुपांतर दलित शब्द के रुप में आया तथा डिप्रेस्ड क्लासेस का अर्थ दलित के रुप में सरकारी भाषा में अंगीकृत किया गया।"25

इस प्रकार चारों भाषाओं के कोशों में 'दलित' शब्द एवं उसके पर्याय शब्दों के अर्थ दिये हुए हैं। निष्कर्षतः दलित शब्द का अर्थ होता है जिसका दमन या दलन किया गया हो अथवा जिसे सदियों से पैरों तले रौंदा,मसला,कुचला गया है। साथ ही जो स्पर्श के योग्य न हो तथा शोषित,पीड़ित,उपेक्षित एंव वंचित है।

1.2. दलित साहित्य अर्थात् क्या ?

समय के साथ समाज–जीवन बदलता है, लोगों के जीवन की रस–रुचि बदलती है, जीवन शैली बदलती है,उसके मूल्य और संदर्भ बदलते हैं। प्रत्येक युग अपने आदर्शों अपनी भावनाओं, मूल्यों और अपने यथार्थ की अभिव्यक्ति करने वाले साहित्य का सृजन करता है।

आज का युग विषमता (संक्षुब्धता) और विच्छिन्नता का युग है। समाज की संकीर्ण मनोवृति, विषम परिस्थिति, अन्याय, अत्याचार के इस युग में दबे हुए, कुचले हुए, पीड़ित, शोषित और तिरस्कृत व्यक्ति की पीड़ा,वेदना, यातना, भावना, अपेक्षा और आदर्शों की समीक्षा और समस्याओं इतना ही नहीं उसके अस्तित्व की पहचान और अस्मिता की परख करने वाले सामाजिक संचेतना और संवेदना को अभिव्यक्त करने वाले नवोन्मेष के स्वरुप में प्रकट हो रहे विद्रोही साहित्य को 'दलित साहित्य' के रुप में पहचान मिली है।

परंपरागत साहित्य में राजाओं उच्च्च पदाधिकारी,ब्राह्मण,क्षत्रीय एवं उच्च्च वर्ण के वैभव की भव्यता और रम्यता की कहानियाँ थीं, जिसमें 'मानव' नहीं थे, और दरकिनार दलितों का तो नामोनिशान नहीं था। इस साहित्य में देवताओं का गुणगान था, किन्तु 'मानव' नहीं था, जबकि दलित साहित्य के केन्द्र में 'मानव' है। जो दलित, पीडित, शोषित है उसकी मनोवेदना है, उसके प्रति हो रहे अन्याय और अमानुषिक व्यवहार की बात है। उसके अस्तित्व और अस्मिता के स्वीकार के साथ परंपरा का इन्कार,प्रस्थापित मूल्यों के समक्ष विद्रोह है, जिसमें प्रस्थापित सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को छोड़कर प्रतिबद्धता पूर्वक मानवीय संवेदना के आर्विभाव की अभिव्यक्ति है। साहित्य की इस नवोन्मेष की धारा में नवयुग का आविष्कार है, दलित–पीड़ित की यातना का आर्विभाव है, दलितों की अस्मिता, अस्तित्व और गरिमा का प्रादुर्भाव है।

डॉ. कालीचरण 'स्नेही' के अनुसार –

> **"दलित साहित्य, मानव मुक्ति का साहित्य तो है ही, साथ ही यह शास्त्र से मुक्ति की चेतना का साहित्य भी है। इस साहित्य में दलितोत्थान की मूल चेतना के साथ–साथ आम सरोकार आदि को नए सिरे से अभिव्यक्त करने का आग्रह है। दलित को सुस्थिर और प्रतिष्ठित होते देखकर कुछ कलावादी और वर्णवादी साहित्यकार उग्र और व्यग्र हैं। उन्हें दलित लेखकों की मेघा से मुठभेड़ करने में काफी ऊर्जा नष्ट करनी पड़ रही है। वे नहीं चाहते कि दलित वर्ग–अपनी कथा–व्यथा, स्थिति–परिस्थिति को साहित्य के माध्यम से मुखरित करे।अक्षरों को अंगार में ढ़लते देख उन्हें असह पीड़ा होती है। वे तो सौन्दर्य और श्रृंगार की उपासना के अभ्यस्त हैं। इसलिए चाहेंगे कि हम भी उसी कल्पना लोक में विचरण करें। लेकिन दलित साहित्यकार का अपना कटु अनुभव संसार है, सदियों की दासता और गुलामी का ब्यौरा है, उसे यदि वह अभिव्यक्त करता है, तो किसी को आपत्ति और आफत क्यों ? हमें अपनी तकलीफें और दूसरों की कूरता लिपिबद्ध करने की इजाजत होनी चाहिए। भला कोई भी सतर्क सवर्ण साहित्यकार अपने पूर्वजों द्वारा दलितों पर किए गए कूरता अमानुषिक अत्याचार कागज पर क्यों आने देगा ? ऐसा होने से वह अपने पूर्वजों को, अपने आपको कठघरे में खड़ा पाता है। कटघरा किसे पसन्द है ? आज दलित साहित्यकारों ने लामबद्ध होकर ऐसे गुनहगारों को कठघरों में लाना आरंभ कर दिया है, जिन पर आदमी को पद दलित करने के आरोप हैं, वे अब बचाव की मुद्रा में उठखड़े हुए हैं और ऐसी हर कोशिश को निरस्त करने में जुट गए हैं। दलित साहित्य के बढ़ते प्रभाव से बड़े–बड़े नामी साहित्यकार वकील (समीक्षक) वर्ण व्यवस्था पोषक और सामन्ती सोच तथा साँचे–ढ़ाँचे के हिमायती हैरत में पड़ गए हैं।"**[26]

दलित साहित्य के विषय में विद्वानों ने विविध मत प्रकट किए हैं। वसन्त पाटणकर ने स्पष्ट कहा है। कि–

> "एक विशिष्ट मिट्टी में जन्मे हुए व्यक्ति की रचना दलित साहित्य नहीं कही जा सकती। सवर्णों द्वारा दलितों के बारे में चाहे जितनी आस्था हो उसमें जीवन्तता हो किन्तु उनके द्वारा निर्मित साहित्य भी दलित साहित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह आस्था कितनी भी उत्कट और जीवन्त होते हुए भी उसमें से दलित चेतना व्यक्त नहीं हो पाती। अतः जन्मना, दलित व्यक्ति द्वारा निर्मित, दलितों के जीवन पर दलित संवेदनशील अनुभूति का चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। इस प्रकार के लेखों में समूह भावना का एहसास व्यक्त होगा तथा प्रकट–अप्रकट रुप से प्रत्यक्ष–परोक्ष रुप से विद्रोह तथा रुढ़िगत समाज–रचना के प्रति नकारात्मक भावना व्यक्त होगी।"[27]

हिन्दी क्षेत्र में जन्में डॉ. राममनोहर लोहिया पहले राजनीतिक समाजवादी हैं, जिनके अनुसार–

> "दलित श्रेणी में हरिजन, शुद्र, आदिवासी, जुलाहा, धुनिया और आदि को स्वीकार किया। श्रमिक दलितों का उस समय विकास नहीं हो पाया था। किसान जो सदियों से पीड़ित रहा, वह भी दलित वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करता है, बशर्ते मजदूर किसान हो। सच तो यह है कि गरीबी रेखा के नीचे जीनेवाला हर व्यक्ति दलित है, चाहे वह किसी भी वर्ग में जन्मा हो। दलित की जाति–जन्मना नहीं होती। इस प्रकार आर्थिक–समाजिक दृष्टि से पीड़ित, शोषित, पिछड़े सभी दलित श्रेणी में आएँगे और इनका गान ही दलित साहित्य कहलाएगा।" [28]

हिन्दी दलित लेखक और दलित चेतना के संवाहक सच्चिदानन्द का मत उल्लेखनीय है–

> "जिस साहित्य में मनुष्य समाज की पीड़ा, दर्द और इनकी कुछ न कर पाने की बेबसी का चित्रण मिलता है वह सब दलित साहित्य है। चाहे वह गैर–दलितों द्वारा दलितों के जीवन को लेकर लिखा गया ही क्यों न हो।"[29]

प्रो.राजमणि शर्मा की दृष्टि में भी–

> "दलित रुप में जन्में व्यक्ति द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य कहना एक अतिवादी सोच है। सत्य तो यह है कि साहित्य रचना एक विशेष प्रकिया और प्रतिभा की अपेक्षा करती है। अतः सभी व्यक्ति दलित साहित्य सृजन में सफल नहीं हो सकते। फिर वही साहित्य दलित साहित्य कहलाएगा जो दलित संवेदना, सौन्दर्य–बोध से जुड़ा हो,वही दलित दलित रचनाकार कहलाएगा जो उसकी अभिव्यक्ति का दावा लेकर चला हो, भले ही वह किसी भी जाति या वर्ग में जन्मा हो।"[30]

दलित शब्द तथा उसके स्वरुप के संदर्भ में जन्मा विवाद साहित्य के स्वरुप तथा मान्यता के संदर्भ में भी विवाद पैदा कर गया। कट्टरवादी 'दलित' रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की मान्यता है कि–

> **"दलित द्वारा दलित जीवन पर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है।"** [31]

उनकी यह मान्यता है कि दलित साहित्य किसी 'आनन्द' या 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए नहीं, आदमी को आदमी की तरह जिन्दा रखने के लिए,उसकी अपनी निजता को स्थापित करने के लिए अस्तित्व में आया है।
जयप्रकाश कर्दम के अनुसार–

> **"दलित लेखन दलितों द्वारा अपने दुख–दर्द, उपेक्षा, उत्पीड़न तथा उसके विरुद्ध संघर्ष और जिजीविषा की शाब्दिक अभिव्यक्ति है।.....दलित लेखकों द्वारा लिखित दलित चेतनोन्मुख साहित्य ही दलित साहित्य है।"** [32]

रमणिका गुप्ता, श्यौराज सिंह बेचैन, तेज सिंह जहाँ वाल्मीकि एवं कर्दम के समर्थक हैं, वहीं रजनी तिलक, राजकुमार सैनी दलित चेतना को लेकर गैर–दलित द्वारा लिखे गए साहित्य को भी दलित साहित्य मानने के पक्षधर हैं, बशर्ते उसमें अनुभूत संवेदनात्मक यथार्थ हो। प्रगतिशील तथा मार्क्सवादी खेमे के चिन्तक भी यही मानते हैं। नारायण सर्वे, बाबू राव बागुल भी इसी मत के हैं। स्वयं बुध्द भी जन्मना दलित नहीं थे और आदि कवि वाल्मीकि के मुख से जब कविता स्वयं प्रस्फुटित हो उठती है तब स्वयं वाल्मीकि भी भोक्ता नहीं थे। वह उनका भोग यथार्थ नहीं था अनुभूत यथार्थ ही था। जिस रचना में दलित जीवन, दलितों के पश्न केंद्रीय हो वह दलित साहित्य है। इस बात पर सभी सहमत रहें लेकिन इसका लेखक कौन होगा इस पर बहस छिड़ी। बहस छेड़ने वाला एक वर्ग सवर्ण–अवर्ण सभी के लिखे गए साहित्य को दलित स्वीकरता था। जबकि दलित साहित्यकारों के अनुसार जन्मना दलित ही दलित साहित्य की रचना कर सकता है। जो जन्मना दलित नहीं है जिन्होंने अछूतपन का दंश नहीं झेला है, जो समाज से उत्पीड़ित, बहिष्कृत नहीं रहे हैं जब वे लिखेंगे तो सहानुभूति के सहारे ही। उनका लेखन यथार्थ पर नहीं बल्कि कल्पना पर आधारित होगा। जब यथार्थ भोगा हुआ नहीं हो तो उसे प्रामणिक रुप से कैसे लिखा जा सकता है ? दलित साहित्य की व्याख्या करते हुए कंवल भारती का कहना है–

> **"दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्यसे है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपायित किया है। अपने जीवन संधर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।"** [33]

यह बात अवश्य कहीं जा सकती है कि दलित समुदाय में पैदा हुए व्यक्ति का कुछ भी लिखा दलित साहित्य नहीं है, दूसरी बात यह है कि दूसरे को देखकर, समझकर, संवेदना के जरिए प्राप्त ज्ञान, अप्रत्यक्ष अनुभव एवं कल्पना के आधार पर लिखा साहित्य

झूठा नहीं कहा जा सकता। मुंशी प्रेमचंद के दलितों पर लिखे साहित्य को इस परिभाषा के आधार पर आंकना अनुचित होगा।

अंत में कहा जा सकता है। कि वे सभी रचनाएँ जो अंशतः या पूर्ण दलित चेतना को उजागर करती हैं, उसे दलित–साहित्य के अन्तर्गत माना जा सकता है। ज्यादातर दलित लेखकों का यह मानना है कि दलित–साहित्य केवल दलित जाति से आया हुआ रचनाकार ही लिख सकता है अर्थात् जब दलित जाति का लेखक अपने वर्ग के लोगों की समस्याओं को आधार बनाकर किसी प्रकार के साहित्य का सृजन करे तब वह दलित–साहित्य कहलायेगा। पर प्रश्न यह है कि वे गैर–दलित लेखक जिनके भीतर दलितों के प्रति संवेदना के स्तर पर सहानुभूति है और करुणा या दयावश अगर वे दलित–समुदाय को आधार बनाकर कोई रचना करते हैं तो उसे क्या कहा जायेगा ?

जनवादी, प्रगतिवादी साहित्य की तरह ही दलित साहित्य भी दरअसल मानसिकता बदलने वाला साहित्य है। यह समाज की गलतियों को चिह्नित करने का और बदलने का साहित्य है। यह मानव मानव की बराबरी और न्याय की मांग करने वाला, सामाजिक दमन के विरुद्ध तर्क करने वाला, विज्ञान पर आधारित विद्रोह का प्रतिबद्ध नायक है। यह भगवान और भाग्य को नकारता है, रुढि,विकृत परंपरा, आडंबर और अंधविश्वास के प्रभंजन का साहित्य है। दलित साहित्य का उपयोग मात्र व्यक्ति नहीं, समाज को बदलने की प्रकिया में किया जा सकता है, चूँकि यह समाज के बहिष्कार, दमन व पीड़ा से उपजा है। यह मनुष्य को मनुष्य न मानने की चोट का, वर्ण के बन्द कमरों में कैद एक बड़ी आबादी के मुक्ति का द्वार खोलने का साहित्य है। वास्तव में यह समकालीन साहित्य परिदृश्य में एक बडी चुनौती का सक्षम उत्तर है।

1.3. दलित साहित्य का प्रयोजन क्या है ?

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है, जैसा समाज हो वैसा उसका सीधा प्रतिबिम्ब साहित्य है। किन्तु जब हम लोगों ने साहित्य पढ़ा, सोचा तब लगा कि समाज का प्रतिबिम्ब जिस दर्पण में दृश्यमान होता, है उसमें तो कुछ निश्चित वर्ण के लोग ही हैं। उसमें गरीबी, दलित, पीड़ित समाज तो है ही नहीं। ब्राह्मण और क्षत्रियों ने अपनी कथा कही। दलितों के बारे में लिखा गया, पर थोड़ी देर से और वह भी सहानुभूतिजन्य रहा, यथातथ्य किसी ने भी कभी भी नहीं लिखा। यही ठेस के चलते दलितों ने कलम उठायी। अनुकरण नहीं, अपने मार्ग स्वयं बनाए। जैसा लगा वैसा लिखा।

वास्तव में दलित साहित्य में जैसा जीवन वैसा चित्रण किया । दुःख, शोक, विडम्बना, भूख, अपमान जो भी गैर दलित समाज ने दलित समाज को दिया उनका निरुपण करना है। दलित समाज के प्रति गैर दलित समाज की घृणा, अपमान बोध ही दलित साहित्य बना। दलित साहित्य का मूल प्रयोजन व्यक्ति को अस्तित्व बोध कराते हुए उसे अस्मिता प्राप्ति करवाना है। मानव को विचारों से परिष्कृत करके उसके जीवन को महत्तम उच्चता प्रदान करना है, जो दलित साहित्य कर रहा है।

दलित साहित्य यथार्थ पर आधारित है। दलितों ने जैसा नारकीय और पाशविक जीवन जिया है, जितनी यातनाएँ अपमान और जिल्लत को भोगा है, उन सबका यथातथ्य चित्रण तथा उसकी आशा, अभिलाषा, संघर्ष, जिजीविषा तथा उपलब्धियों की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य का प्रयोजन है। चूँकि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं उसके पथ–प्रदर्शन का भी कार्य करता है। वह समाज को प्रेरणा और दिशा देता

है। दलित साहित्य समाज की अनिवार्यता है तथा तब तक समाज में असमानता, अन्याय शोषण होता रहेगा तब तक दलित साहित्य की अनिवार्यता बनी रहेगी।

दलित साहित्य जीवनानुभिमुखी साहित्य है, जीवनवादी साहित्य है, मानव और केवल मानव उसके केन्द्र में है, मानव मूल्यः मानव धर्म, मानव कर्म उसके केन्द्र में है, न्याय और विवेक उसके केन्द्र में है, तर्क और प्रमाण उसके केन्द्र में है, "कला कला के लिए" नहीं "कला जीवन के लिए" का विचार और उसकी चिंताएँ उसके केन्द्र में है। उसका जीवन से सीधा सरोकार है, जीवन की समस्याओं, कठोर और निर्मम वास्तविकताओं से जूझने का मुद्दा उसमें है। यथास्थितिवाद के प्रति विद्रोह की भावना दलित साहित्य में है और यही उसका प्रयोजन है।

दलित साहित्य चेतना एवं सृजना का सीधा संबंध दलितों की मानवीय प्रतिष्ठा और उनकी अस्मिता से है, जिसका प्रयोजन यथास्तितिवादी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा भय, भाग्य व भगवान की भूमिका वाले तिलस्म को तोड़ना है। तत्पश्चात् ही बहुजन दलित समाज को मानवीय अधिकारों की प्राप्ति एवं जीवन मूल्यों की खोज कर जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो सकता है। जो सृजन शोषित–प्रवंचितों या दलितों में आत्म–बल और 'आत्म–सम्मान' की भावना जागृत कर सके वही दलित साहित्य का प्रयोजन है। यही विभाजन रेखा अन्य प्रकार के साहित्य प्रयोजन से दलित साहित्य के प्रयोजन की पृथक पहचान को रेखांकित करती है।

समाज में फैले अत्याचार शोषण गरीबी, छूआछूत, उपेक्षा जो मानवीय अस्तित्व को नकारती है, वह दलित साहित्य की धरोहर है। विश्व में कोई भी देश या प्रान्त नहीं होगा जहाँ पर यह विषमता भारत जैसी हो। जब इस विषमता को नज़र अंदाज करना नामुमकिन है तो उसके परिणाम 'साहित्य सर्जना' को भी नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। प्रभुत्ववर्ग की विचार धारा से प्रेरित साहित्य सर्जना पर बात करते हुए शंभूनाथजी ने लिखा है कि–

> **"प्रभुत्वशाली वर्ग की विचार धारा ही साहित्य रुपों को प्रभावित ,नहीं करती। उस वर्ग को चुनौती देने वाली दलित–विचार–धारा ' भी नये साहित्य रुपों को जन्म देती है।"[34]**

अर्थात् प्रभुत्व वर्ग की विचारधारा समाज की सच्चाई की ईमानदारी पूर्ण चित्रित नहीं करेगी। उसमें ज्यादातर प्रतिष्ठा, आडंबर, खोखले आदर्शों, प्रदर्शनकारिता आदि को प्राथमिकता दी जायगी, जबकि दलित–वर्ग की विचारधारा समाज की विषमता एवं विसंगतियों का यथातथ्य, सहज, सजीव, वास्तविकता परक चित्रण करेगी। दूसरे शब्दों में उसका प्रयोजन यही रहेगा कि इस शोषण को नाम शेष करवाने हेतु यथार्थ को उसके नग्न रुप में चित्रित करने में जरा भी हिच–किचाहट महसूस न हो।

यह सर्वथा निश्चित है कि आदमी की आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक स्तर पर मुक्ति ही दलित–साहित्य का मुख्य स्वर है। वह निःसंदेह सामाजिक परिवर्तन का स्त्रोत है। आज का दलित साहित्य हमारे युग राष्ट्र एवं जीवन के सामाजिक तथा आर्थिक जगत के परिवर्तित तथा वास्तविक मूल्यों को सच्ची, सार्थक, निःस्पृह अभिव्यक्ति प्रदान कर रहा है, वह हमारी बदलती परिस्थिति का सूचक है। कुलीन, आडंबर, कृत्रिम तथा बनावटी साहित्यिक संस्कारवादिता का उसने छेदन करके आदमी के पास बैठा दिया है। वह दलित पीड़ित समस्त उपेक्षित उसी तरह विस्तृत जन–जीवन का यथार्थ

चित्रण करता है। वह जनशक्ति का हथियार है। वह ज़िन्दगी की तलहटी में बैठा है। आज का साहित्य समाज से दूर राजनीति का अनुयायी बन गया है।

'समाज सेवा ' के संपादक और सुपरिचित लेखक श्री मनमोहन मदारिया के अनुसार—

> **"मैं मानता हूँ वहाँ तक दलित समाज जीवन की समस्याओं को चित्रित करने वाला साहित्य दलित साहित्य है। जो कि ऐसा साहित्य कई वर्षों पहले से लिखा जा रहा है, परंतु आज उसकी पहचान दूसरी ही तरह से शुरु हो रही है। यह सत्य है कि साहित्य प्रथम दृष्टि में कलात्मक होता है और कलात्मक होना भी चाहिए परंतु उसका स्वयं का प्रयोजन होता है और जहाँ तक दलित साहित्य का संबंध है, उसमें दलित वर्ग का जितना प्रामाणिक चित्रण होगा उतना प्रामाणिक होगा। इससे यदि वह प्रामाणिक साहित्य होगा तो वह दलित वर्ग की समस्याओं के प्रति स्वाभाविक रुप से हमारा ध्यान खींचेगा और वह समस्याओं के समाधान के लिए हमें परिवर्तन का स्त्रोत देख सकते हैं। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का वास्तविक अर्थ दलित वर्ग के उत्थान का ही है।"[35]**

दलित साहित्य जनता का साहित्य है। जनता के साहित्य का अर्थ है—

> **"ऐसा साहित्य जो जनता के जीवन मूल्यों को जनता के जीवनादर्शन को प्रतिस्थापित करता हो उसी तरह उसे मुक्ति पथ पर ले जाता हो, उस मुक्तिपथ का अर्थ राजनैतिक मुक्ति से लेकर अज्ञात की मुक्ति तक है। इससे उसमें प्रत्येक प्रकार का साहित्य समाविष्ट हुआ है। शर्त इतनी ही है कि वह वास्तव में ही उसे मुक्तिपथ पर अग्रसर करेगा।"[36]**

उपरोक्त विचारों के अंत में स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य का केन्द्रबिंदु मनुष्य है। दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का एक मात्र प्रयोजन है।

1.4. हिन्दी दलित साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य की विधा बहुत पुरानी नहीं है। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना रखने वाले हमारे देश के ऋषी—मुनियों ने तो संपूर्ण विश्व को एक परिवार के रुप में स्वीकार किया था। हमारे ऋषी—मुनियों ने वैश्विक दृष्टि का परिचय दिया। जहाँ एकता, समानता, प्रेम, होता है वहाँ ऊँच—नीच, भेदभाव, बड़े—छोटे की भावना के लिए अवकाश नहीं होता। किन्तु जब इस भावना की अवहेलना की गई, ऊँच—नीच, छूत—अछूत, सवर्ण—असवर्ण की कलुषित भावना शुरु हुई तभी से दलित विमर्श की शुरुआत हुई, ऐसा कहा जा सकता है। दलित विमर्श उस समाज व्यवस्था की देन है जिसमें जाति और वर्ण के आधार पर मनुष्य मात्र में अंतर किया जाता है और समाज के एक बड़े तबके को अछूत मान लिया जाता है। दलितों के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा है कि—

> "हमारे पूर्वज इस देश के मूल निवासी थे। उनका ही देश में एक छत्र राज्य था। मध्य एशिया से आर्य आये और उन्होंने यहाँ सभ्यता और संस्कृति पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया। कालान्तर में मनुस्मृति जैसे ग्रन्थों के माध्यम से वर्ण–व्यवस्था का षड़यन्त्र रचकर मानव को मानवेत्तर बना डाला। इस व्यवस्था में ब्राह्मणों को शिक्षा क्षत्रियों को रक्षा, वैश्यों को धन तथा शुद्रों को उत्पादन और सेना संबधी जिम्मदारी सौंपी गई थी। उच्च कहलाने वाले तीनों वर्ण अपनी जिम्मेदारी का ठीक तरह से निर्वाह करने में असफल रहे जिसका परिणाम हमारे सामने है। यह देश, शिक्षा, रक्षा और आर्थिक दृष्टि से खोखला होता गया और होता जा रहा है। मात्र शुद्र वर्ग ही अपने कर्त्तव्य का निर्वाह ठीक ढंग से पालन करता रहा और आज भी कर रहा है।"[37]

भेदभाव पूर्ण समाज व्यवस्था के कारण 'उच्च वर्ण' को सदैव सभी संभव सुविधाएँ व अधिकार प्राप्त हुए हैं, जबकि 'निम्न वर्ण' को हमेशा अधिकारहीन और सेवा तक सीमित रखकर उनके साथ अन्याय हुआ है। यह सिलसिला शताब्दियों तक जारी रहा। देश में आदिकाल से ही सवर्णो का बोलबाला रहा है। समाज व्यवस्था और सारे नियम–कानून उन्हीं लोगों के द्वारा निर्मित हुए, उन्हीं के द्वारा फैलाये हुए जाति–पाँति, ऊँच–नीच, छुआ–छूत के भेदभाव का ही परिणाम है, बौद्ध धर्म का आगमन। श्री सुरेशचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी में दलित साहित्य के प्रारंभ को भक्ति काल से माना है। उन्हीं के शब्दों में–

> "भारतीय समाज में आदिकाल से ब्राह्मण धर्म का वर्चस्व रहा है। जिन्होंने अपनी इच्छानुसार समाज को व्यवस्था दी, जिसमें कुछ बातें सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य रहीं, तो अनेक ऐसी रहीं जो भेदभाव मूलक तथा शोषण को बढ़ावा देने वाली थी। सवर्ण–असवर्ण के बीच में ऊँच–नीच और अस्पृश्यता आदि की भावनाएँ ऐसी ही थी, इसी आधार पर अन्त्यजनों का शारीरिक, बौद्धिक एवं आर्थिक शोषण भी किया जाता था। कहना न होगा यहाँ का बौद्ध धर्म इसी की प्रतिकिया में आया और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसने समता मूलक दृष्टि की स्थापना की। चौरासी सिद्धों में सिद्ध सरहपा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। अपने समय में इस विद्वान सवर्ण ने असवर्ण स्त्री से विवाह किया। भेदभाव दूर करने का यह इनका पहला प्रयास दिखाई देता है। यह तो इनके हृदय की साहित्यिक भावना मानी जा सकती है। किन्तु दक्षिण के महाराष्ट्री सन्त तथ उनकी प्रेरणा एवं परिणाम के फलस्वरुप उत्तर भारत के अनेक हिन्दी संतों ने प्रतिकिया स्वरुप ऐसी भावनाएँ एवं उद्‌गार व्यक्त किए हैं जिन्हें दलित चेतना की देन माना जा सकता है। हिन्दी दलित साहित्य के इतिहास के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। अनेक विद्वानों का मानना है कि दलित चेतना का आरंभ सबसे पहले मराठी साहित्य में हुआ। यह रजनीतिक चेतना की देन है। उत्तर भारत में यह कुछ देर से आई, किन्तु हिन्दी दलित साहित्य का मूल स्वर अस्पृश्यता, वर्णवाद, जातिवाद तथा आर्थिक शोषण के विरुद्ध रहा है। अतः यदि यह कहा जाए कि यहाँ दलित चेतना का विकास भक्तिकाल से शुरु हो गया था तो अनुपयुक्त न होगा।"[38]

आधुनिक काल में दलितों ने शुद्र, अन्त्यज, अछूत, पंचमवर्ण, हरिजन आदि शब्दों को नकारकर अपने लिए 'दलित' शब्द अपनाया और तथा कथिक उच्च जाति के लोगों से रियायत मांगने के स्थान पर समाज के आमूल परिवर्तन की मांग उठायी गई। यह मांग राजनीति में उठी और साहित्य में भी, दलित साहित्यकारों ने विद्रोह और आक्रोश भरी रचनाओं के जरिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय का स्वर बुलंद किया तथा दलित समुदाय में आत्मगौरव का भाव भरने का अभियान चलाया। आज दलित–विमर्श की चर्चा के बिना कोई भी साहित्य–सांस्कृतिक कार्यक्रम अधूरा माना जाता है। दलित लेखकों की बढ़ती संख्या, सर्जनात्मकता में गुणात्मक सुधार और व्यापक स्वीकृति के चलते यह मुख्य विमर्श बन गया। दलित विमर्श का संबंध वर्ण–जाति व्यवस्था के अस्वीकार से है।

हिन्दी में दलित साहित्य के प्रारंभ को लेकर काफी चर्चा–विचारणा होती है। श्री बुद्धशरण हंस के अनुसार–

> **"हिन्दी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में दलित साहित्य नाम की कोई विधा न पायी जाती है और न प्रदर्शित होती है। शौर्य और श्रृंगरी–वर्णन से हिन्दी साहित्य की यात्रा प्रारंभ हुई है। चारण, भाट अपने राजाओं के दरबार में तुकबंदी, पहेली, कविता कहकर इनाम, बक्शीस पाते थे। दरबारी कवि अपने आकाओं का युद्ध वर्णन, प्रशस्तिगान करते थे। नायिकाओं का नख–शिख वर्णन कर साहित्यिक रसधारा बहाते थे। राजपूतों के शासनकाल में हिन्दी साहित्य का जन्म हुआ है। उस समय भी समाज में बहुसंख्यक दलित थे। जिनके शोषण पर राजाओं का शासन था। जिन राजाओं ने दलितों का जितना अधिक शोषण किया उनका उतना ही प्रतापी शासनकाल कहा गया। राजतंत्रीय परिवेश में शौर्य और श्रृंगार के सिवाय दलित चेतना की न कोई गुंजाइस थी न गरिमा समाज में दलित बेसुमार थे, किन्तु साहित्य में दलितों की भावना नगण्य थी। इस काल को हिन्दी का आदिकाल कहा जाता है। साहित्य का अदिकाल दलित साहित्य का शून्यकाल है।"**[39]

दलित साहित्य का स्रोत वैदिक साहित्य, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि का गहराई से अध्ययन करने पर दिखाई देता है। वेदों में कुछ उदाहरण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के है तो कुंछ में दलितों को हीन भी माना गया है। उपनिषदों, रामायण, तथा पुराणों में भी ऐसे कई प्रसंग आए हैं जिनमें दलित चेतना बलवती है। मनुस्मृति के प्रणेता मनु ने दलितों के लिए जो नियम निर्धारित किए वे काफी सख्त हैं, जिसके अंतर्गत दलितों को सभी उच्च वर्ण की सेवा सदैव करने की बात कही है। मनुस्मृति में जातीयता, अस्पृश्यता जैसी विषयमताओं को देखा जा सकता है।

पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, सभी भाषाओं के काव्य में दलित–साहित्य के सूत्र दिखाई दे जाएँगे। मध्यकाल में ही पूर्णरुपसे दलित साहित्य अपने संपूर्ण लक्षणों के साथ देखने को मिलता है। राजनैतिक परिवर्तनों के कारण हिन्दू राजाओं का स्थान मुस्लिम राजओं ने लिया। परिणम स्वरुप सत्ता परिवर्तन से हिन्दू राजाओं की ठेस पहुँची साथ ही दलित चेतना में जागृति आई। इसी संदर्भ पर प्रकाश डालते हुए बुद्धशरण हंस लिखते हैं कि–

"हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भारतीय राजनीति की पराधीनता का काल है। निरंकुश हिन्दू राजाओं का शासन समाप्त हुआ और मुसलमान राजाओं का शासनकाल प्रारंभ हुआ। मुसलमान राजाओं से भारत की स्वाधीनता आक्रान्त हुई, किन्तु दलित चेतना की जागृति इसी काल से प्रारंभ हुई। मुसलमान राजाओं के काल में बेसुमार सूफी सन्त जन–जन के बीच जाकर इस्लाम का प्रचार करने लगे। इस्लाम की शिक्षा, समता, स्वतंत्रता तथा भाईचारा ने दलितों को आकर्षित किया। सूफियों के प्रभाव बेशुमार दलित, पीड़ित उपेक्षित लोग मुसलमान बन गए। जो नहीं बने उन दलितों के दिलों में हिन्दू–व्यवस्था के विरुद्ध घृणा और भी घनीभूत हो गयी। सूफीसंत कवि, गायक, उपदेशक बहुत कुछ थे। इसी काल में दलित साहित्य का जन्म हुआ। दलित समाज से इस्लाम कबूल किए लोगों ने प्रथम बार ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया। गैर, मुस्लिम दलितों को भी शिक्षा का थोड़ा–बहुत अवसर और अधिकार मिला। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्यकार उभरे और दलित चेतना मुखर हुई। कवि संत गुरु सरहपा, कोणहप्पा, नामदेव, दादू, पलटू, नानक, कबीर, रविदास इसके प्रमाण हैं। मध्यकाल में दलित साहित्यकार (सन्तों और गुरुओं) ने ईश्वर का सहारा लेकर दलितों को सम्मान और सुरक्षित करने की युक्ति निकाली।"40

हमारे यहाँ पहले वर्ग विभाजन जाति के आधार पर नहीं कर्म के आधार पर होता था। किन्तु मनुवादी संस्कृति के आने पर वह वर्ग विभाजन जन्म के आधार पर हो गया।

भक्ति आंदोलन भारत की प्रतिरोधी परंपरा का ऐतिहासिक दौर है। भक्ति काल में निर्गुण परंपरा के अधिकांश रचनाकार अवर्ण तबकों से आए थे। इनमें कबीर, रविदास, सेन, सदना, दादू आदि थे। आज की दलित कविता का पूर्ववर्ती रुप इन कवियों की कविता में देखा जा सकता है। मध्ययुगीन संत कवियों ने दलितोद्धार की जो परंपरा शुरु की आगे चलकर नवजागरण कालीन समाज सुधारकों ने इसे आगे बढ़ाया। जिसमें **स्वामीदयांनद सरस्वती, आचार्य विनोबा भावे, ज्योतिबा फूले, महात्मा गाँधी, डॉ. बाबा साहब आम्बेडकर** आदि के नाम मुख्य रुप से दिये जा सकते हैं।दलित समाज में जागृति लाने और संपूर्ण समाज में मानवीय गरिमा तथा स्वाभिमान का आंदोलन छेड़ने में महात्मा ज्योतिबा फूले (1927–1890) तथा बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर (1891–1956) मे अपना संपूर्ण जीवन वर्ण–जाति के खात्मे व जनतांत्रिक समाज की रचना में लगा दिया। हिन्दी में दलित शब्द का प्रयोग मराठी के बाद में हुआ। मराठी में इस शब्द का प्रयोग करने वाले महात्मा ज्योतिबा फुले थे।
डॉ. ए.पी. शिवाजी ने लिखा है–

"भारत में प्रथम बार महात्मा ज्योतिबा फूले (1827–1890) द्वारा जागृति का दीप प्रज्वलित किया गया। पहली बार उन्होंने जाति बहिष्कृतों और अस्पृश्यों के लिए दलित शब्द का प्रयोग किया। माली जाति के होते हुए भी सन् 1873 में सत्य शोधक समाज का निर्माण कर दलितों के मसीहा के रुप में चेतना को जाग्रत किया। जिसके प्रभाव के कारण अंग्रेज सरकार सन् 1935 में पद दलित अभिव्यक्ति को हटाकर 'अनुसूचित जाति' का प्रयोग किया और सन् 1947 में स्वतंत्रता के बाद 'अनुसूचित और

अनुसूचित जनजाति' शब्दों को भारतीय संविधान में समाविष्ट किया गया। राजनैतिक आधार पर दलितों को उठाने पर बहुत से कार्य–क्रम प्रस्तुत किये गये। परंतु ऊँचे वर्गों के लोगों के हृदय में दबे हुए लोगों के प्रति समभाव, समानता का प्रत्यय उदय नहीं हुआ। दलितों को दलित बनाकर रखने का दुश्चक्र चलता रहा। भारतीय राजनीति में मंडल, मंदिर, मस्जिद के प्रश्न उछलते रहे। साथ ही यह नारा 'तिलक, त्रिशुल, तलवार : इनको मारो जूते चार' आकाश में तैरते रहे। डॉ.बी.आर. आम्बेडकर ने दलितों के उद्धार का प्रयत्न किया और परिणति उनके द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने में हुई।"[41]

बाबा साहब भीमराव आम्बेडकर ने जिन व्यक्तियों से प्रेरणा हासिल की थी ज्योतिबा फुले उनमें से एक थे। फुले ने एकसाथ कई भूमिकाएँ अदा की। वे एक लेखक थे और शिक्षक थे। फुले की रचनाओं में शोषक तबके के खिलाफ जबरदस्त आक्रोश है। उनकी प्रमुख रचनाओं में **'ब्राह्मण की चालाकी' (1869), 'गुलामगीरी' (1873), 'किसान का कोड़ा' (1883),** उल्लेखनीय है। फुले ने 'सत्यशोधक समाज' (सन् 1873) की स्थापना की। फुले के साथ ही उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले ने भी स्त्रियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले और कई विरोधों को झेलते हुए अपने समाज में नारी जागृति के कार्य एवं अपने अभियान को जारी रखा। ज्योतिबा फुले ने दलितों में जागृति का दीप प्रज्वलित किया उसे कालान्तर में बाबा साहब ने अपने ढंग से आगे बढ़ाया। सवर्णों के अस्पृश्यता पूर्ण व्यवहारों ने अत्याचारों ने भीमराव को ठेस पहुँचाई थी। समाज से यह भेदभाव के वातावरण को खत्म करने के लिए उन्होंने सर्वप्रथम दलित समुदाय को जागृत करने का अथक प्रयास किया। डॉ. आम्बेडकर की प्रमुख किताबों में **'भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति', 'हिन्दू धर्म की पहेलियाँ', 'शूद्रकौन थे', 'बुद्ध और उनका धम्म', 'जाति प्रथा का उन्मूलन'** आदि हैं। उनके द्वारा संचालित 'दलित साहित्य सेवा संघ' में दलितों से संबंधित जो भी लेखन हुआ, उसे दलित साहित्य संज्ञा से अभिहित किया गया। उनके द्वारा चलाएँ गए प्रमुख आंदोलनों में महाड सत्यागह (1927) तथा नासिक कालाराम मंदिर प्रवेश (1930) के नाम लिए जा सकते हैं। दलित साहित्यकारों ने बाबा साहब के संघर्षपूर्ण जीवन एवं दलितोद्धार के कार्यों से प्रेरणा लेकर उनके हर कार्य को लिपिबद्ध किया है साथ ही उन्हें अपना पथ–प्रदर्शक माना है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी दलितों को न्याय नहीं मिल पाया। परिणामस्वरुप बड़े पैमाने पर असंतोष बढ़ा। हिन्दी कविता में साठोत्तरी काल को विद्रोही पीढ़ी, भूखी पीढी आदि नाम दिए गए हैं। इस दौर में दलित साहित्य में कुछ इसी तरह की पीढ़ी आई थी। आधुनिक काल में मुंशी प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यापन, नागार्जुन, मुक्तिबोध, फणीश्वरनाय रेणु, आदि तमाम कवियों एवं रचनाकारों ने दलित साहित्य का समृद्ध किया है। आज़ादी के खोखलेपन को उद्घाटित करती, ब्राह्मणशाही के आंतक का बयान करती इस पीढी का प्रतिनिधि स्वर मराठी दलित कवि नामदेव ढसाल के यहाँ सुना जा सकता है।

जिन दिनों बाबा साहब का संघर्ष महाराष्ट्र की जमीन पर चल रहा था उन्हीं दिनों हिन्दी क्षेत्र में भी दलित समुदाय के चिंतक लेखक नए सिरे से संगठित और सक्रिय हो रहे थे। इनकी आवाज में पूरे समुदाय की सम्मिलित आकांक्षा प्रतिध्वनित थी। बीसवीं सदी के दूसरे–तीसरे दशक में सक्रिय ऐसे दलित रचनाकारों ने हीरा डोम,

अछूतानंद 'हरिहर', केवलानंद आदि हैं। हीरा डोम की एक ही कविता आज प्राप्त है। **'अछूत की शिकायत'** शीर्षक से यह कविता 'सरस्वती' पत्रिका में वर्ष 1914 में छपी थी। यह कविता पहली दलित काव्य रचना कही जा सकती है। भोजपुरी में 40 पंक्तियों की यह कविता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में प्रकाशित हुई जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

"डोम जाति हमनी के छुए से डरेहले।
हमनी के राति दिन मेहनत करीले जा,
दुइगो रुपयवा दरमहा में पाइवि।
ठाकुरे के सुखसेत घर में सुतलबानी,
हमनी के जाति–जाति खेतिया कमाइबि।
हमनी के रातदिन दुखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुहाइबि।
हमनी के दुख भगवनओं न देखत जे,
हमनी के कनुले कलेसवा उठाबि।"[42]

अछूतानंद ने दलितों के लिए 'आदि हिन्दू' आंदोलन चलाया था। लोक छंदों में रचना करने वाले अछूतानंद डॉ. आम्बेडकर की लेखनी से परिचित और उनके कार्यों से प्रेरित–प्रभावित थे। स्वामी अछूतानंद ने गीता–गज़लों के अतिरिक्त नाटक भी लिखे। उनका लिखा नाटक **'मायानंद बलिदान' (1926)** उल्लेखनीय है।

सन् 1950 से लेकर 1990 तक के समय को हिन्दी में दलित लेखन का दूसरा चरण कहा जा सकता है। दलितों को उनके अतीत और वर्तमान के प्रति सजग करना है इस दौर के लेखन का मुख्य उद्देश्य था। डॉ. भीमराव आम्बेडकर से प्रभावित दलित लेखक विषम परिस्थितियों में भी संघर्ष करने के लिए तत्पर थे। डॉ. आम्बेडकर के दिए सूत्र **'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो'** को दलित लेखन का मुख्य सूत्र बनाकर उनके संदेश को जन–जन तक ले जाने का प्रयास इस समय के लेखकों ने किया। इसी चरण में डॉ. भीमराव आम्बेडकर के जीवन पर आधारित तीन प्रबंध काव्य हिन्दी में प्रकाशित हुए– **'भीमायण'(बिहारीलाल हिरत, 1973), 'भीम सागर'(लक्ष्मीनारायण सुधारक, 1985)** तथा **'भीम कथामृत्'(रामदास निमेष, 1990)** इन रचनाओं में तार्किकता और वैज्ञानिकता के साथ श्रद्धा और अंधश्रद्धा का पुट भी है। इस दौरान के दलित रचनाकरों ने 'कला' की विशेष चिंता किए बगैर ही दलित सामज पर सदियों से होने वाले अत्याचार अन्याय को अपनी कविता के माध्यम से प्रस्तुत किया। जो कार्य तलवार नहीं कर सकती वह कलम कर सकती है, अर्थात् अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित साहित्यकारों ने दलितों के उत्पीड़न के परंपरागत सिलसिले को लेखन के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया साथ ही इसे रोकने के लिए भी लोगों में जागृति लाने का प्रयास किया। अप्रैल–मार्च 1981 में 'निर्याणयक भीम' की पत्रिका में छपी ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में बेलछी, शेरपुर, पारसद्विधा, नारायण पुर स्थल पर दलितों पर हुए अत्याचार, अमानवीय कृत्य को प्रस्तुत किया गया। दलितों पर होने वाले प्राणघातक हमले एवं उन पर होने वाले अत्याचार को दलित साहित्य में आक्रोश के साथ प्रस्तुत किया गया। यह आक्रोश बेवजह नहीं था।

महाराष्ट्र में जन्में ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने वहाँ समाज सुधार का आंदोलन छेड़ा, जिससे मराठी दलित लेखन पर उसका प्रभाव

स्वाभाविक रुप से देखा जा सकता है। हिन्दी दलित लेखन पर इसी का प्रभाव देखा जा सकता है। मराठी दलित लेखकों से प्रेरणा और दिशा प्राप्त कर हिन्दी दलित लेखकों ने रचनाएँ लिखीं। मराठी के आंदोलन धर्मी दलित युवा लेखकों ने **'दलित पैंथर'** का निर्माण किया दलित पैंथर का घोषणापत्र 1973 में आया अपनी स्थापना के एक वर्ष बाद। दलित पैंथर ने अपने शुरुआती दिनों में महाराष्ट्र के गाँव–गाँव में बहुत सघन प्रतिरोधी अभियान चलाए। पैथर के कार्यकार्ताओं ने सभी तरह के अन्याय–अत्याचार का जमकर विरोध किया। पैंथर के घोषणापत्र से दलित साहित्य के बारे में एक मुकल्लम दृष्टि बनी। इन सबका प्रभाव हिन्दी के दलित लेखकों पर भी पड़ा।

दलित लेखन को व्यापक चर्चा में लाने का कार्य 'सारिका' पत्रिका ले किया। इसके संपादक कमलेश्वर ने 1975 में अप्रैल और मई अंक मराठी दलित लेखन को समर्पित किए। इस पत्रिका के माध्यम से बाबूराव बागूल, अर्जुन डांगले, अरुण कांवले, बन्धु माधव, प्रा.ई.सोन कामले से हिन्दी पाठकों को परिचित कराया गया और दलित रचनात्मकता की शक्ति का एहसास भी कराया गया। दिसंबर 1981 में संपादक महीपसिंह द्वारा प्रकाशित पत्रिका संचेतना के चौथे अंक में 'मराठी दलित साहित्य विशेषांक' में करीब पच्चीस दलित रचनाकरों को शामिल किया। इससे हिन्दी में दलित साहित्य की चर्चा को व्यापकता तथा कुछ हद तक स्वीकृति मिली साथ ही हिन्दी के दलित रचनाओं में इससे नया जोश आया।

सन् 1990 तक आते–आते राष्ट्रीय परिदृश्य पर बहुत से बदलाव घटित हुए। जैसे– सरकारी नौकरियों में आरक्षण हेतु मंडल कमीशन की सिफारिशें लागू होना, आरक्षण–व्यवस्था का बडे पैमाने पर उग्र विरोध किया जाना। दलितों तथा पिछड़े तबकों पर सवर्णों द्वारा हिंसक आक्रमण किए जाना। भारत वैश्वीकरण और आर्थिक उदारिकरण की दौड़ में शामिल होना। दलित साहित्य पर इन सब का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ा। इस पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षरों में **ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, कंवल भारतीय, सी. बी. भारती, कुसुम मेघवाल, कर्मशील भारती, जयप्रकाश कर्दम, विपिन बिहारी, श्यौराज सिंह बेचैनद्वजयप्रकाश लीलवान** आदि हैं। वर्तमान समय में इन साहित्यकारों के अतिरिक्त कई नए दलित साहित्यकार जुड़ते जा रहे हैं। अन्याय का विरोध अपनी कविताओं के माध्यम से दलित कवियों ने किया है। सदियों से सर पर मैला ढ़ोने वाला दलित ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में पूछता है समाज से–

"जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गंदगी से भरी बाल्टी
कनस्तर / किसी हाथ में
मेरी रगों में दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ।"[43]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की **"बस्स बहुत हो चुका।"** कविता में उन्होंने अपनी कुंठा और कुढ़न को सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है। जैसे–

"कभी नहीं मांगी बालिश्त भी जगह
नहीं मांगा आधा राज भी
मांगा है सिर्फ न्याय.....
थोड़ा–सा बचपन

थोड़ा–सा अपनापन
जब–जब भी कुछ मांगा
वे गोलबंद होकर टूट पड़े
मैं अवका।"[44]

राजनीति के क्षेत्र में भी दलित साहित्य की आज मुख्य भूमिका है। परिवर्तन, सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के औजार के रुप में दलित साहित्य का प्रयोग किया जा रहा है। आरक्षण के मुद्दे, राजनीति में भागीदारी, रोजगार और आर्थिक समृद्धि में समान अवसर पाने की बात को इसके माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है। आरक्षण और बराबरी की हिस्से दारी के मुद्दे पर कटाक्ष करते हुए जयप्रकाश कर्दम कहते हैं–

"तुम्हारा आरक्षण उचित है
और मेरा अनुचित
अब हर क्षेत्र में होगी
समान रुप से हिस्सेदारी
शासन प्रशासन से लेकर
मैला ढोने, जूती गांठने
और झाडू लगाने तक के काम में भी
बांटनी होगी समानता।"[45]
(गूंगा नहीं था मैं)

दयानंद बटोही का विश्वास है कि–

"दलित कविता आज के माहौल को चकाचौंध नहीं करती
बल्कि नई ऊर्जा देती है।"[46]

ओमप्रकाश वाल्मकीकि कहते हैं–

"जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे,
वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा,
गतिशीलता की संवाहक है।"[47]

दलित कविताओं में प्रतिशोध की प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। जिन पर जुल्म हुआ हो वे विवेक कब तक बनाए रखेंगे। गैर दलितों द्वारा दलितों पर होने वाले अत्याचार के प्रति दलितों का प्रतिशोध आक्रोश के रुप में कंवल भारती 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या मेली' शीर्षक कविता में इस प्रकार उभरता है–

"क्रान्ति की भाषा सुंदर नहीं होती
जैसे कि अखबार
जो तुम्हें रोज़ गुदगुदाते हैं
ये बताओ बलात्कार की शिकार
तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी ?"[48]

दलित वर्गों पर सदियों से रुढ़ियों, कुप्रथाओं मनुस्मृति जैसे कायदे, कानूनों की जो मार पड़ती रही है, उसी की आहें कराहें दलित कविता बनी है। लेकिन स्त्री जो दलित में भी दलित है और संख्यात्मक दृष्टि से वह इस वर्ग का आधा हिस्सा है। वह इस रचना विषय में भी कम ही कवियों का विषय बन पाई है। श्री एन. आर. सागर अपनी कविता में दलितों की दुर्दशा और उत्पीड़न पर दृष्टिपात करते हुए कहते हैं कि यदि यही दशा गैर दलितों की होती तो उन्हें कैसा लगता ?

"यदि तुम्हारी बहिनों–बेटियों को
सर्वप्रथा निर्वस्त्र कर घुमाया जाये
गली–गली नचाया जाये,
कसे जायें गंदे फिकरे,
और किया जाये बलात्कार
सड़कों–चौराहों पर,
सामने तुम्हारे,
तब, तुम्हे कैसा लगेगा ?"[49]

दलित साहित्य आम आदमी के उत्थान और उन्नयन का हिमायती रहा है। अधिकार युद्ध कविता में श्री लक्ष्मी नारायण सुधाकर स्पष्ट घोषणा करते हुए कहते हैं–

"यदि मिले नहीं अधिकार हमें तो ईंट से ईंट बजा देंगे।
अन्यायी–अत्याचारी के शोणित से नदी बहा देंगे।
हम आदिवासी भारत के कुछ करके अब दिखला देंगे।
अब तक तो दास–गुलाम रहे, अब गिन–गिन कर बदला लेंगे।
'मनु' के पोते–पड़पोते तुम' अब भी आ जाओ बाज यहाँ
धन–धरती पर कुण्डली मार, कर सकते तुम नहीं राज यहाँ।
यह देश हमारे पुरखों का, पहला अधिकार हमारा है।
सम्मान और धन–धरती का, होगा फिर से बंटवारा है।
हम देख चुके नेताओं को, करते वे वादे छिछले हें।
इसलिए आज शोषित–पीड़ित, सर बांध कफन अब निकले हैं।
आम्बेडकर वादी फौलादी, समता का मिशन हमारा है।
'अधिकार–युद्ध' का बिगुल बजा, संघर्ष हमारा नारा है।
हिंसा और अहिंसा का अब प्रश्न नहीं पैदा होगा।
जैसे भी हो इस शोषण का, कर अन्त कोई सौदा होगा।"[50]

दलित साहित्य को कई बार इसीलिए सिर्फ वेदनाका साहित्य कहा जाता है। वेदना का चित्रण इस समाज के पारंपरिक साहित्य में पहले भी होता रहा है लेकिन दलित वेदना अजनानी चीज रही। इसे लोगों के सामने रखते हुए प्रखर दलित कवि मलखान सिंह लिखते हैं।–

"गाँव के दक्खिन में
पोखर की पार से सटा यह डोम वाड़ा है।
जो दूर से देखने में

ठेठ मेंढक लगता है
और अंदर घुसते ही
सूअर की खुडारों में बदल जाता है।
यहाँ की कीचभरी गलियों में पसरी
पीली अलसाई धूप देख
मुझे हर बार लगा है कि–
सूरज बीमार है या–
यहाँ का प्रत्येक बाशिन्दा
पीलिया से ग्रस्त है
इसीलिए उनके जवान चेहरों पर
मौत से पहले का पीलापन
और आंखों में
ऊसर धरती का बौनापन
हर पल पसरा रहता है।"[51]

इस तरह की तमाम कविताएँ हमें दलित कवियों ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, कंवल भारती, मोहनदास नैमिशराय, असंग घोष आदि के काव्य संग्रहों में मिलती हैं। जिनकी संक्षिप्त सूची इस प्रकार हैं–

<u>हिन्दी दलित कविता संग्रह</u>

क्रम	कविता संग्रह	कवि का नाम
1.	'दलित पचासा'	एस.आर.विद्रोही
2.	'आग और आंदोलन'	मोहनदास नैमिशराय
3.	'कब होगी भोर'	सूरजपाल चौहान
4.	'क्यों विश्वास करुँ'	सूरजपाल चौहान
5.	'क्रोंचे हूँ में'	डॉ. श्योराजसिंह बेचैन
6.	'गूंगा नहीं था मैं'	जयप्रकाश कर्दम
7.	'टुकड़े–टुकड़े दंश'	कुसुम वियोगी
8.	'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती'	कँवल भारती
9.	'तुमने उसे कब पहचाना'	सुशीला टाकभौरे
10.	'ार पर दस्तक'	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
11.	'परतों का दर्द'	डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
12.	'परिचय सतसई'	माता प्रसाद
13.	'पलकें सुलग रही हैं'	दामोदर मोरे
14.	'विरांगना झकारीबाई'	बिहारी लाल हरित
15.	'शम्बूक का बलिदान'	आर. बी. सुमन
16.	'शोषित नामा'	मनोज सोनकर
17.	'सदियों का संताप'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
18.	'ये अक्षर नहीं अंगारे हैं'	रणजीत पंथी
19.	'यह तुम भी जानो'	सुशीला टाकभौरे
20.	'सदियों के बहते जख्म'	दामोदर मोर
21.	'दखल देती कविता' आदि।	पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

कविता के बाद हिन्दी साहित्य में जिस विधा में सबसे ज्यादा सृजन हुआ वह है कहानी। हिन्दी दलित साहित्य की पहली कहानी कौन सी है ? इस पर विशेष चर्चा अभी तक नहीं हुई है। इस दिशा में शोध की आवश्यकता है, किन्तु वर्तमान दौर में **ओमप्रकाश वाल्मीकि** और **मोहनदास नैमिशराय** की कहानियाँ ही सबसे पहले देखने को मिलती हैं। इनके बाद **दयानंद बटोही, सूरजपाल चौहान, कुसुम वियोगी, विपिन बिहारी, कावेरी, बुद्धशरण हंस, पारसनाथ, जयप्रकाश कर्दम, सत्यप्रकाश, सुशीला टाकभौरे, रजतरानी 'मीनू', अनीता भारती'** आदि उल्लेखनीय कथाकार के रुप में सामने आये हैं। अभी प्रकाशित रुप में सामने आये कहानी संग्रहों में–

<u>कहानी संग्रह</u>

कम	**कहानी संग्रह**	**लेखक का नाम**
1.	'सलाम'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
2.	'घुसपैठिए'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
3.	'आवाजें'	मोहनदास नैमिशराय
4.	'हमारा जवाब'	मोहनदास नैमिशराय
5.	'सुरंग'	दयानंद बटोही
6.	'चन्दमौलि का रक्त बीज'	सत्य प्रकाश
7.	'जुडते दायित्व'	कुसुम मेघवाल
8.	'एक और राज्याभिषेक'	सत्य प्रकाश
9.	'रसायन'	सत्य प्रकाश
10.	'तीन महाप्राणी'	बुद्धशरण हंस
11.	'हैरी कब आएगा ?'	सूरजापाल चौहान
12.	'टूटता वहम'	सुशीला टाकभौरे
13.	'अनुभूति के घेरे'	सुशीला टाकभौरे
14.	'संघर्ष'	सुशीला टाकभौरे
15.	'सत्य का सफरनामा'	जियालाल आर्य
16.	'प्रेरणाचार्य एक नहीं'	कावेरी
17.	'अपना मकान 'पुनर्वास'	विपिन बिहारी
18.	'साज और अन्य कहानियाँ'	टी. पी. राही
19.	'चार इंच की कलम'	कुसुम वियोगी
20.	'जहरीली जडें'	रुपनारायण सोनकर
21.	.'तलाश'	जयप्रकाश कर्दम
22.	'दृष्टिकोण'	अरविंदकुमार राही
23.	'हुकुम की दुग्गी'	रत्नकुमार सांभरिया
24.	'हिस्से की रोटी' आदि।	शत्रुघ्न कुमार

दलित कहानियों के कुछ संपादित कहानी संग्रह भी सामने आए हैं। इस दिशा में कुसुम वियोगी और एन. सिंह की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसकी सूची निम्नप्रकार है–

संपादित कहानी संग्रह

क्रम	कहानी संग्रह	सम्पादक का नाम
1.	'चर्चित दलित कहानियाँ'	कुसुम वियोगी
2.	'प्रतिनिधि दलित कहानियाँ'	कुसुम वियोगी
3.	'दलित महिला कथाकारों की चर्चित कहानियाँ'	कुसुम वियागी
4.	'काले हाशिए पर'	डॉ. एन. सिंह
5.	'यातना की परछाइयाँ'	डॉ. एन. सिंह
6.	'चिंगारी'	डॉ. कुसुम मेघवाल
7.	'समकालीन दलित कहानियाँ'	डॉ. कुसुम मेघवाल
8.	'दलित जीवन की कहानियाँ'	गिरीराज शरण
9.	'दूसरी दुनियाँ की यथार्थ'	रमणिका गुप्ता
10.	'जातिदंश की कहानियाँ'	सुभाषचन्द्र कुश्वाहा
11.	'हासिए से बाहर'	रजतरानी 'मीनू'
12.	'हिन्दी दलित कथाकारों की पहली कहानी' आदि।	सूरजपाल चौहान

हिन्दी दलित उपन्यास

क्रम	उपन्यास	उपन्यासकार का नाम
1.	'माटी की सौगंध'	प्रेम कपाडिया
2.	'जय तस भई सवेर'	सत्य प्रकाश
3.	'मुक्ति पर्व'	मोहनदास नैमिशराय
4.	'छप्पर'	डॉ. जय प्रकाश कर्दम
5.	'करुणा'	डॉ. जय प्रकाश कर्दम
6.	'नया ब्राह्मण'	सूरजपाल चौहान
7.	'सुबह के लिए रण'	कैलाश चन्द चौहान
8.	'भाँवर'	कैलाश चन्द चौहान
9.	'हिडींबा'	एस. आर. हरनोट
10.	'ठंडी आग'	प्रेम कपाड़िया
11.	'हम दलित'	प्रेम कपाडिया
12.	'धरती पुत्र'	राणा प्रताप
13.	'मिस रमिया'	कावेरी
14.	'थमेगा नहीं विद्रोह'	उमराव सिंह जाटव
15.	'आक्रोश'	रघुवीर सिंह
16.	'दलित दहन'	एस. के. पंचक
17.	'गिरे हुए लोग'	नवल वियोगी

18.	'झलके आँसू भीगे आँचल'	रामशिरोमणी
19.	'आग पानी आकाश'	रामधारी सिंह दिवाकर
20.	'कर्मवीर अम्बेडकर'	के. एल. कमल
21.	'किस्सा गुलाम'	रमेश चन्द्र शाह
22.	'एक टुकडा इतिहास'	गोपाल उपाध्याय
23.	'ज्योति पुंज महात्मा फुले'	जीयालाल आर्य
24.	'सीता' आदि।	रमणिका गुप्ता

दलित नाटकों

क्रम	नाटक	नाटककार का नाम
1.	'अंतिम अवरोध'	एन. आर. सागर
2.	'तड़प मुक्ति की'	डॉ. माता प्रसाद
3.	'अंतहीन बेडियाँ'	डॉ. माता प्रसाद
4.	'धर्म परिवर्तन'	डॉ. माता प्रसाद
5.	'वीरांगना झलकारी'	डॉ. माता प्रसाद
6.	'संकल्प'	शिवनाथ शिलबोधी
7.	'होले कामरेड'	मोहनदास नैमिशराय
8.	'अदालत नामा'	मोहनदास नैमिशराय
9.	'छू नहीं सकता'	सूरजपाल चौहान
10.	'रंग और व्यंग्य'	सुशीला टाकभौरे
11.	'नंगा सत्य'	सुशीला टाकभौरे
12.	'एकलव्य'	राम अवतार सिंह
13.	'दो चेहेरे'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
14.	'महानायक'	रुपनारायण सोनकर
15.	'कठौती में गंगा'	डॉ. एन. सिंह
16.	'संवाद के पीछे'	मनोजकुमार केन
17.	'शंबूक वध'	लल्लन सिंह
18.	'सच बोलने वाला शुद्र है' आदि।	सूरजपाल चौहान

दलित आत्मकथाएँ :–

क्रम	आत्मकथा	आत्मकथाकार का नाम
1.	'अपने–अपने पिंजरे'	मोहनदास नैमिशराय
2.	'दो भाई'	मोहनदास नैमिशराय
3.	'जूठन'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
4.	'दोहरा अभिशाप'	कौशल्या बैसंत्री
5.	'तिस्कृत'	सूरजपाल चौहान
6.	'संतप्त'	सूरजपाल चौहान
7.	'नागफनी'	रुपनारायण सोनकर
8.	'मैं भंगी हूँ'	डॉ. भगवानदास

9.	'मेरा बचंपन मेरे कंधों पर'	श्योराज सिंह बेचैन
10.	'शिकंजे का दर्द'	सुशीला टाकभौरे
11.	'एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी'	प्रो. श्यामलाल
12.	'मेरा सफर मेरी मंजिल'	डॉ. डी. आर. जाटव
13.	'झोंपड़ी से राजभवन'	डॉ. माता प्रसाद
14.	'राज सतसई :एक दलित की आत्मकथा' आदि।	डॉ. राजपाल सिंह 'राज'

सब पर ऊँगली उठाने वाले दलित लेखकों ने अपने भीतर झांकने की भी हिम्मत दिखाई। उनके आत्मकथनों में आत्मलोचन की प्रवृत्ति विशेष तौर पर दिखाई देती है। आत्मलोचन के तीन मुख्य बिंदु रहे हैं– वैयक्तिक स्तर पर अपनी विफलओं, चुकों का स्वीकार, आंतरिक जातिवाद की समस्या पर विचार और दलित स्त्री की तिहरी दुर्दशा पर चिंता। दलित रचनाकारों ने सबसे पहले अपने व्यक्तित्व के उन पहलुओं पर ध्यान दिया जो दलित समाज से जुड़ने तथा उसके लिए लड़ने में बाधा उत्पंन्न करते हैं।

आलोचना साहित्यः–

कम	आलोचना	लेखक का नाम
1.	'दलित पत्रकारिता में साहित्यिकसांस्कृतिक चिंतन'	मोहनदास नैमिशराय
2.	'अपने–अपने पिंजरे : समीक्षात्मक अध्ययन'	मोहनदास नैमिशराय
3.	'दलित चिंतन के विविध आयाम'	अ. ला. ऊके
4.	'दलित साहित्य और सामजिक न्याय'	डॉ. पुरुषोतम सत्यप्रेमी
5.	'परिवर्तन ज़रुरी है'	सुशीला टाकभौरे
6.	'साहित्य और सामाजिक कांति'	डॉ. दयानंद बटोही
7.	'दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य'	कालीचरण स्नेटी
8.	'हिन्दी साहित्य में दलित चेतना'	डॉ. आनंद भास्कर
9.	'मेरा दलित चिंतन'	डॉ. एम. सिंह
10.	'आज का दलित साहित्य'	डॉ. तेजसिंह
11.	'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
12.	'चिंतन परंपरा और दलित साहित्य'	डॉ. श्योराजसिंह बैचेन एवं डॉ. देवेन्द्र चौबे
13.	'दलित विमर्श साहित्य के आईने में'	जयप्रकाश कर्दम
14.	'दलित साहित्य की भूमिका'	हरपालसिंह अरुष
15.	'दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर' आदि।	विमल थोरात

संस्मरण

कम	संस्मरण	लेखक का नाम
1.	'कुछ यादे : डॉ भीमराव आम्बेडकर'	रामगोपाल भारतीय
2.	'डॉ. आम्बेडकर : जीवन के अंतिम कुछ वर्ष'	नानक चंद रत्तू
3.	'बाबा साहब के संपर्क में पच्चीस वर्ष' आदि।	सोहनलाल शास्त्री

जीवनी:–

कम	जीवनी	लेखक का नाम
1.	'भारत के सामाजिक कांतिकारी'	देवेन्द्र कुमार बैसंत्री
2.	'छत्रपति साहुजी'	कुसुम मेघवाल
3.	'मानवतावादी काशीराम'	अशोक गजदिये
4.	'सावित्रीबाई आम्बेडकर'	शांतिस्वरुप बौद्ध
5.	'रमाबाई आम्बेडकर'	शांतिस्वरुप बौद्ध
6.	'बाबु जगजीवनराम'	ओमप्रकाश मौर्य
7.	'महान दलित कांतिकारी योद्धा मातादीन'	सूरजपाल चौहान
8.	'भारत रत्न डॉ. भीमराव आम्बेडकर'	मोहनदास नैमिशराय
9.	'शोषित समाज के कांतिकारीप्रवर्तक'	चरणसिंह भण्डारी
10	'भारत की पहली शिक्षिका सावित्रीबाई फुलें आदि	रजनीतिलक

एकांकी :–

कम	एकांकी	लेखक का नाम
1.	'संकल्प'	शिवनाथ 'शीलबोधि'
2.	'बारात नहीं चढ़ेगी' आदि	मनोजकुमार एन

महाकाव्य :–

कम	महाकाव्य	लेखक का नाम
1.	'अग्नि सागर'	डॉ. श्यामसिंह राशि
2.	'दिग्विजयी रावण'	डॉ. माता प्रसाद
3.	'युग पुरुष'	डॉ. दयानंद बटोही
4.	'बुद्ध सागर' आदि	लक्ष्मी नारायण सुधाकार

अन्य :–

कम	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम
1.	'मीडिया और दलित'	श्योराजसिंह बेचैन एवं एस. एस. गौतम
2..	'दलित उत्पीडन की परंपरा और वर्तमान'	मोहनदास नैमिशराय
3..	'1857 की कांति में दलितों का योगदान'	मोहनदास नैमिशराय
4.	'चमार जाति का गौरवशाली इतिहास'	सतनामसिंह
5.	'सफाई देवता : वाल्मीकि समाज की ऐतिहासिक सांस्कृति, सामाजिक पृष्ठभूमि'	ओमप्रकाश वाल्मीकि
6.	'निर्गुण नाम भक्ति और दलित जातियाँ'	राजदेव सिंह
7.	'दलित समाज और संस्कृति'	तेजसिंह
8.	'जातियों का जंजाल'	डॉ. माता प्रसाद
9.	'वर्ण व्यवस्था और जातिभेद'	एस. एल. सागर
10.	'वर्ण व्यवस्था या मरण व्यवस्था ?' आदि	भदंत आनंद कौशल्यायन

इस प्रकार आज दलित साहित्य में विभिन्न विधाओं में विकास कि ओर अग्रसर हो राह है। समाज में जो कुछ घटित होता है वह उसी रुप में साहित्यकार के द्वारा साहित्य में सामहित कर लिया जाता है। इसलिए **"साहित्य सामज का दर्पण है"** यह कथन बहुचर्चित एवं महत्त्वपूर्ण है। भारतीय समाज में दलितों की स्थिति से हम बखूबी परिचित हैं। उनके शोषण–अत्याचार तथा उन पर गुजारे गयं जुल्मों का कच्चा चिट्ठा साहित्य ही प्रस्तुत करता है। भारतीय साहित्यकारो ने अपनी –अपनी भाषा के साहित्य में दलितों की पीड़ा को बखूबी चित्रित किया है। चाहे वह प्रेम चंद की कहानी **'सद्‌गति'** व **'ठाकुर का कुँआ'** या फिर नागर्जुन का **'बलचनमा'** सभी भारतीय समाज की उस विडंबना को रेखाकित करते है। दलित साहित्य के उद्‌भव के संदर्भ में हम देख चुके हैं कि इस शब्द को प्रयोग भले ही नया है किन्दु इस साहित्य की जड़ बहुत पहले से चली आती हुई दिखाई देती है। यह साहित्य जब से भारतीय साहित्य समाज स्थापित हुआ तभी से इस साहित्य की नींव पड़ गई है ऐसा कहाजा सकता है। दलित साहित्य का वह एक दौर था कि जब वह अपने अस्तित्व के लिए, पहचान के लिए जूझ रहा था किन्तु सवर्णों के भागे वह विफल होता रहा। कुछ सवर्ण जो मार्क्स, तथा लेनिन की विचारधाराओं से प्रभावित थे, दलित वर्ग की व्यथा को साहित्यिक रुप पदान कर रहे थे, किन्तु दलित वर्ग में उस समय उतना सामर्थ्य नहीं था की वह अपनी वकालत कर सकें। धीरे–धीरे समय बदलता गया। उस वर्ग में भी शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ और उसमें अपनी बात कहने का साहस आ गया। हिन्दी दलित साहित्य के संबंध में कंवल भारती ने अपनी पुस्तक **'संत रैदास एक विश्लेषण'** के निवेदन में कहा है कि–

> **"दलित साहित्या ने अभी घुटनों के बल फिर से चलना शुरु किया है वह जब प्रौढ़ होकर हिन्दी साहित्य के समकक्ष खड़ा होगा, तो मुझे विश्वास है कि विद्वान उसकी प्रतिबद्धता के मूल्य को एक दिन पहचानेंगे।"**[52]

आज धीरे–धीरे दलित साहित्य अपनी जड़ जमाने लगा और उसके सुदृढ़ होने के आसार नज़र आने लगे हैं। हिन्दी में दलित साहित्य की स्थितियों को दर्शाते हुए भी राजेन्द्र नामदेवजी लिखते हैं कि–

> **"जब हिन्दी में दलित साहित्य की बात आती है तो जहाँ तक मेरा मानना है कि दलित वर्ग पर तो साहित्य शताब्दियों से लिखा जाता रहा है, पर उसमें शब्दों का परिवर्तन अवश्य आया है। अगर हम मध्य युग के साहित्य से ही बात कहें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है कि मध्युग में भी विद्वान–संत–महात्मा दलितों की समस्या को लेकर चिंतित थे और उन्होंन साहित्य में भी स्थान दिया। उच्च वर्ग और निम्नवर्ग के बीच मैत्री भी करायी। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है गौस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' जिसमें राम सभी वर्गों को लेकर चलते हैं। पर 'रामचरित मानस' में भी कुछ विद्वान तुलसी की एक चौपाई ढूँढ लेते हैं, वही–"ढोल गंवार शुद्र पशुनारी सकल ताड़ना के अधिकारी।"**[53]

भारतीय समाज का आधुनिक युग काफी परिवर्तनों को लेकर आया। इस युग में जहाँ समाज धर्म और राजनीति के क्षेत्र में बदलाव आया वहीं साहित्य का क्षेत्र इससे अछूता नहीं रहा। वैसे भी साहित्य की तमाम विधाएँ आधुनिक में नया आकार ग्रहण करती है। कविता, कहानी, उपन्यास आदि तमाम समाज के जिस वर्ग का वर्चस्व

समाज पर अधिक होता है, लोगों का समर्थन भी ज्यादातर उसी ओर जाता है। लेकिन उसी संबंध में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो अल्प संख्यक वर्ग का समर्थन करते हैं। साहित्य के क्षेत्र में देखें तो कबीर, रैदास, प्रेमचंद, नागार्जुन, मुक्तिबोध तथा आधुनिक तमाम साहित्यकार दिखाई देते हैं। जो दलित न उपेक्षित वर्ग का समर्थन करते हैं। भारतीय सामाज में दलित साहित्य की स्थिति नहींवत् या बहुत कम थी। किन्तु आधुनिक भारतीय समाज में धीरे–धीरे परिवर्तनों के चलते दलित वर्ग की स्थिति सुदृढ़ होती गई, जिसमें हमारी सरकार का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि दलित कौन है ? यह दलित–विमर्श की आधारभूत बहस है। विभिन्न विद्वान अपने–अपने ढ़ंग से दलि शब्द का अर्थ देते है। मेरी दृष्टि में दलित वह है जिस पर सवर्णों द्वारा जबरन गंदे कार्य कराए जाते हैं। जिस सवर्णों पर आश्रित रहना पड़ता है। जो सदियों से पीड़ित, कुंठीत, विवश एवं लाचार हैं। जिसका शोषण हुआ हो। दलित साहित्य किसे कहते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि जिस साहित्य में दलित समाज के लोगों के जीवन, उनकी संवेदना, उनकी पीड़ा, उनके प्रश्न, उनकी स्थिति, उनकी उपेक्षाओं का यथार्थ चित्रण हो वही दलित साहित्य है। चाहे वह दलित या गैरदलित साहित्यकार द्वारा लिखा गया हो, उसे दलित साहित्य का प्रयोजन है दलितों में नई चेतना, जागृति, आत्मसम्मान की भावना, स्वाभिमान से जीवन व्यतीत करने की इच्छ जागृत करना आदि के माध्यम से अपनी स्थिति, अवस्था में सकारात्मक सुधार ला सकें। अपने जीवन को दलित बेहतर एवं सम्मान जनक बना सकें। हिन्दी और गुजराती के दलित साहित्य का उद्भव और विकास के अंतर्गत् हिन्दी और गुजराती दलित साहित्य का उद्भव कब एवं किन परिस्थितियों में हुआ। कौन–कौन से विद्वानों ने इसके विकास एवं समृद्धि में अपना योगदान दिया यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। दलित साहित्य दलितों के वेदनामय जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से लिखा जाता रहा है। इसी का परिणाम है कि इसमें शिल्प और कला को प्राथमिकता नहीं दी गई है बल्कि उसकी अन्तर्वस्तु को ही प्राथमिकता दी गई है। परिवर्तनकामी दलित साहित्य कलात्मकता की ज्यादा परवाह नहीं करता। उसके लिए विषय या विचार ही महत्त्वपूर्ण होता है। यह मनोरंजन के लिए नहीं लिखा जाता बल्कि दलितों के जीवन की कटु सच्चाई से सामज के सभी वर्गों को परिचित कराना चाहता है। समाज में आवश्यक, बड़ा, एवं महत्त्वपूर्ण बदलाव लाने का उद्देश्य ही उसका सौन्दर्यशास्त्र है।

गुजराती दलित साहित्य का उद्भव एवं विकास

भारत में सर्वप्रथम महाराष्ट्र में आंदोलन के रुप में दलित साहित्य लिखने की शुरुआत हुई। वैदिक काल में चार वर्णों में विभाजित भारतीय समाज व्यवस्था में दलित समाज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजकीय स्वतंत्रता से सदैव वंचित रखा गया। दलितों को केन्द्र में रखकर साहित्य रचना की जाना एक नयी धारा का विकास कहा जा सकता है, जो प्रचलित धारा की प्रवृत्ति तथा उसके मूल्यों एवं मान्यताओं के प्रति असहमति प्रकट करता हो। किसी भी साहित्य का उद्भव, उद्देश्य और आवश्यकता के पीछे उसके समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के साथ–साथ उसकी धार्मिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि या परंपरा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

दलितों को हमारे परंपरागत साहित्य में सदैव पृथक एवं हाशिये पर रखा गया। उनकी सदियों पुरानी दासता यातनामय जीवन उपेक्षा पूर्ण व्यवहार की पीड़ा को वाचा देने के लिए दलित साहित्य का निर्माण हुआ है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए दलितों को ऐसे साहित्य के सृजन की नितांत आवश्यकता थी, जो दलितों को उनकी अस्मिता से परिचित कराए, अज्ञान के अंधेरे को बाहर निकालकर उन्हें ज्ञान का सूर्य दिखाए। चेतना से हीन इस दलित सामाज की सुशुप्त आत्मा को झकझोरने का कार्य सर्वप्रथम ज्योतिबा फुले ने किया। फुले ने सामाजिक विषमता को खत्म करने, ईश्वर और भक्त के बीच के दलालों को नष्ट करने, सभी के लिए शिक्षा के द्वार खोलने आदि कार्यक्रमों को लेकर आंदोलन किए थे। उन्होंने 'गुलामगीरी' (1873) नाटक भी लिखा था।

एक ओर रशियन क्रान्ति की सफलता और दूसरी ओर अफ्रिका से गाँधीजी के 1915 में भारत आगमन से भारत की शोषित प्रजा सतर्क हुई। भारत लौटने पर गाँधीजी ने 'अस्पृश्यता निवारण' आंदोलन चलाया। परिणामस्वरुप पीड़ित, शोषित, दलित जनता सक्रीय हुई उनमें चेतना का संचार हुआ। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का दूषण माना। रमणिका गुप्ता के शब्दों में–

> **"हालांकि गुजरात की धरती में स्वामी दयानंद से गाँधीजी तक जातीय भेदभाव के खिलाफ मुहिम छेड़ने वाले समाज सुधारक पैदा हुए, जिन्होंने अस्पृश्यता के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर मुहिम चलाई। इसका प्रभाव गुजराती साहित्य और वहाँ के लोकसाहित्य पर भी पड़ा। वह मुहिम वर्णव्यवस्था के दायरे में रहते हुए अस्पृश्यता का विरोध तो करती थी पर जातियता को समूल नष्ट करके समानता, भाइचारे और आजादी का मुद्दा उसमें शामिल नहीं था। वह मुहिम धर्म से मुक्त नहीं थी। अपने वर्तमान स्वरुप में दलित चेतना का आंदोलन बाबा साहब ने ही चलाया। महाराष्ट्र से सटा हुआ गुजरात है बल्कि उन दिनों गुजरात महाराष्ट्र में ही था। महाराष्ट्र में दलित साहित्य की जब लहर आई तो वह गुजरात के दलित मन को भी भींगा गई और दलित लेखक की वाणी कलमबद्ध होने लगी। आहत और पीड़ित मन ने पहले कविता का रास्ता ही चुना जो मनुष्य आदिकाल से चुनने का आदी रहा है। बाद में वह साहित्य की सभी विधाओं में उकिर आने लगी............।"[54]**

महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले और गुजरात में गाँधीजी की विचारधारा का प्रभाव गाँधी युग के गुजराती साहित्यकारों पर भी पड़ा। र.व.देसाई (ग्रामलक्ष्मी, दिव्यचक्षु, सुन्दरम्, भंगडी, माजावेला की मृत्यु), झवेरीचंद मेघाणी (चमारना बोले, भाई), रा.वि.पाठक (खेमी), ईश्वर पेटलीकर (बावड़ी का पानी, वट, पारसमणी, अंतरपट) इत्यादि ने अपनी कुछ कृतियों में दलितों की वेदना का निरुपण किया। किन्तु गुजराती आलोचक डॉ.भरत महेता के अनुसार–

> **"जैसे–जैसे आज़ादी नजदीक आती गयी वैसे–वैसे दलितों को डर लगने लगा कि सवर्ण पूर्ववत व्यवहार करेंगे तब ? कुछ घटनाएँ भी उसी प्रकार की घटित हुई। हिन्दू होने का गौरव स्वीकार करने से गाँधीजी की हिन्दू के हाथ से हत्या हुई, अस्पृश्यता दूर करने के लिए लड़ने वाले गाँधीजी**

> **को अस्पृश्यों के नेता डॉ. बाबा साहब आंबेडकर के साथ विवाद हुआ। संविधान के निर्माता डॉ.आंबेडकर आज़ाद भारत को 'राष्ट्र' के रुप में मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन दिनों में पुनः दलित पीड़ित की संवेदना गुजराती साहित्य में से लुप्त होने लगी। सुन्दरम्, पन्नालाल पटेल जैसे लेखकों का पांडिचेरी प्रस्थान शुरु हुआ। शुभ दिन आने की प्रतीक्षा करने वाले उमाशंकर जोशी ने, 'देश आज़ाद होते हो गया', या 'छिन्न भिन्न हूँ' जैसे निराशावादी विचार व्यक्त किये।"**[55]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि देश का अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्रता मिल गई किंतु स्वराज नहीं मिला। स्वतंत्रता के पश्चात् भी दलितों के जीवन में आंशिक परिवर्तन ही आया। दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार एवं उनका शोषण निरंतर जारी रहा। स्वराज निरर्थक सिद्ध हुआ। ऐसी भी परिस्थिति आई कि अंग्रेजों के शासन काल को बेहतर कहा गया।

ई.स. 1975 के बाद सरकारी योजनाएँ दलित वर्ग के लिए जो आयीं उनके द्वारा दलितों का विकास संभव था किन्तु इन योजनाओं का उद्देश्य दलितों का कल्याण करने के बजाय दलितों की वोट बैंक लेने का विशेष महत्त्व का था। परिणामस्वरुप वे योजनाएँ तिल का ताड़ बनी। इतनी अधिक योजनाओं के होने पर भी अधिकांश दलित वर्ग की स्थिति जस की तस बनी रही। दलित समाज अपने ही देश में पराया और अछूता कर दिया गया। चिनु मोदी के 'काला अंग्रेज' उपन्यास का नायक मनसुख बहुत ही गंभीर–मार्मिक बात करता है–

> **"गाँधी अंग्रेजों को खदेड़ सके, क्योंकि वे तो परदेसी थे, किन्तु हमारे देशवासियों को कैसे खदेड़ सकेंगे ?"**[56]

डॉ. अम्बेडकर का सपना था एक सुदृढ़, समुन्नत और सुखी–सम्पन्न राष्ट्र और समाज का जहाँ बौद्ध धर्म के तीन तत्त्व स्वतंत्रता, समानता और न्याय हो। इन्हीं तीन तत्त्वों को उन्होंने दलित मुक्ति आंदोलन के लिए मुख्य उद्देश्य बनाया, जिससे आंदोलन अधिक सक्रीय बना। उनका यह भी कहना था कि अधिकार कभी भी मांगने से नहीं मिलते, अधिकार छीने जाते हैं। इसलिए अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष किया जाना चाहिए।

शताब्दियों से दलितों के पिछडेपन का एक बड़ा कारण उनका अशिक्षित होना ही रहा, अशिक्षा ने उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा। जिस वैदिक हिन्दु धर्म ने और जाति प्रथा ने अंधकारमय जीवन जीने के लिए दलितों को विवश किया और सत्ता–सम्पत्ति और शिक्षा से वंचित रखा ऐसे धर्म और विचारधारा के विरुद्ध उन्होंने आंदोलन किया। ई.स. 1920 में 'मूकनाक' नामक पत्रिका द्वारा उन्होंने क्रांतिकारी विचार दलितवर्ग के समक्ष रखे थे।

24 दिसंबर ई.स.1927 के दिन डॉ. आम्बेडकर द्वारा 'मनुस्मृति' के दहन और इसके माध्यम से दलित मुक्ति का संग्राम छेड़ा गया। इसी के साथ महाड के चवदार तालाब का सत्याग्रह, नासिक का प्रसिद्ध कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह इस संघर्ष की बाद की कड़ी थी। डॉ.अम्बेडकर द्वारा दलितों के लिए औरंगाबाद में मिलिंद विश्वविद्यालय की स्थापना से दलितों में शिक्षा के प्रति जागृति एवं अपने अधिकारों, कर्त्तव्यों, एवं मनुवादी मानसिकता से मुक्ति पाने की झटंपटाहट होने लगी।

भारत में जैसी स्थिति दलितों की थी, वैसी ही स्थिति अमेरिका में नीग्रो की थी। दासता का जीवन जीने वाले नीग्रो ने गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष किया था और अपने साहित्य की स्वयं रचना की। नीग्रो लेखक ने 'Black panthers' की स्थापना 1966 में की थी 'Black panthers' से प्रेरणा लेकर महाराष्ट्र में 9 जुलाई 1972 में दलित साहित्य के प्रेरक परिबल के रुप में 'दलित पेंथर' का जन्म हुआ। दलित पेंथर एक आम्बेडकरवादी युवा संगठन था। मराठी दलित साहित्य को इस संगठन से महत्त्वपूर्ण वेग मिला।

सन् 1981 और 1985 के व्यापक प्रकार के आरक्षण के आंदोलनों का प्रभाव दलित साहित्यकारों पर पड़ा। सवर्ण एवं दलितों के बीच हिंसक घटनाएँ होने लगीं जिससे गोलाणा या सांबरड़ा जैसी घटनाएँ घटी। आज भी शंबूकवध या खांडववन जलाने की प्रक्रिया बन रही हैं उनकी प्रतीति होने लगी। ऐसी घटनाओं ने दलित युवकों को विचार के लिए बाध्य कर दिया। गुजरात में दलित साहित्य का प्रारंभ कविता से हुआ था, किन्तु आश्चर्य की बात है कि कहानी में दलित संवेदना का इस प्रकार निरुपण हुआ कि आज दलित कहानियाँ मुख्य प्रवाह की सशक्त धारा आरक्षण के आंदोलनों ने दलितों में एकता स्थापित करने का कार्य किया, दलित चेतना को आगे बढ़ाया। 'गुजरात दलित साहित्य अकादमी' और गुजरात की दलित पत्रिकाओं ने भी दलित चेतना के विकास में अपनी भूमि अदा की। 'आक्रोश' के अतिरिक्त 'काला सूरज', 'दलित शक्ति', 'दलित चेतना', 'अधिकार', 'दिशा', 'समाजमित्र', 'नयामार्ग' और अकादमी की पत्रिका 'हयाती' तथा अन्य कई पत्रिकाएँ ऐसी हैं जिन्होंने दलित साहित्यकारों को मंच देने, उनका विकास करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दलितों एवं गैरदलितों के द्वारा व्यापक रुप से दलित साहित्य लिखा गया। कविता (संपादन 11, संग्रह 36) कहानी (लगभग 250) उपन्यास 30, रेखाचित्र, नाटक,एकांकी निबंध, आत्मकथा जैसे विभिन्न रुपों से दलित साहित्य लिखा गया।

दलित कविताः–

गुजराती में दलित कविता का प्रथम सबल आविष्कार 14 वीं अप्रैल के ऋतुपत्र 'आक्रोश' द्वारा हुआ। प्रारंभ में दलित कविता के संपादन हुए हैं। गुजराती दलित कविता का प्रथम संपादन गणपत परमार मनीषी जानी द्वारा 1981 में दलित कविता प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् 'विस्फोट' (1982) संपादक–चंदु महेरिया, बालकृष्ण आनंद, 'अस्मिता' (1983) संपादक–चंदु महेरिया, 'वूगियो बजे' (1984) संपादक–हरीश मंगलम् 'संकलनगीता' (1986) संपादक–राजु सोलंकी, 'एकलव्य का अंगूठा' (1987) संपादक–नीलेश कापड, 'मनुष्य' (1982) संपादक–वसंत पुरणी, 'गोरंभो' (1994) संपादक–चंद्राबहन श्रीमाली, 'दुंदभि' (2001) संपादक–दलपत चौहान, हरीश मंगलम्, प्रवीण गढ़वी, 'दलित गीत गज़ल' (2006) संपादक–हरीश मंगलम् जैसी दलित काव्य के महत्त्वपूर्ण संपादन समय–समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। के.बी.पंडया का 'चिनगारी' (1982), दलपत चौहान 'तोफिर (1983), 'कहाँ है सूर्य ?' (2000), साहिल परमार–'व्यथा पचीसी' (1984), 'मथामण' बबलदास चावडा 'अत्याचार होने दो' (1984), 'बतीके उजाले' (1991), रमण वाघेला–'स्पर्श की महक' (1984), प्रवीण गढ़वी–'बेयोनेट'(1987), 'पडछायो' (1986) 'आसवद्वीप' (1986), राजु सोलंकी–'मशाल' (1987), गणेश सिंधव–'विषादिता' (1987), हरीश मंगलम्–'प्रकंप', यशवंत वाघेला–'हम अंधेरे में निकली पर छाइयाँ', शिवजी रुखड़ा 'फूल का पर्याय' (1990), बिपिन गोहिल–'घिसते मनुष्य को घूंटता हूँ'

(1992), 'उघाड़ जैसा खुलता मनुष्य' (2000), नरसिंह उजम्बा 'धम्मवंश (1996), नीलेश कापड़ 'अग्निकण'(1999), शामत परमार 'ज्वालामुखी' (1999), चन्द्रबहन श्रीमाली 'ओवारण (2000), 'मिजाज' (2001), भी. न. वणकर–'ओवर ब्रीज़', के.के.बैष्नव–'आँख', ए.के. डोडिया–सूर्योन्मुख', किसन सोसा–'अनौरस सूर्य', पथिक परमार–'बहिष्कृत (2003), नीरव पटेल–'बहिष्कृत फूलो' (2006), नरेन्द्र वेगडा का 'आपका पारस आप' (2006) इत्यादि काव्य संग्रह मिलते हैं। इनके अतिरिक्त जयंत परमार, मधुकान्त कल्पित, मौन बलोली, चंदु महेरिया, मोहन परमार, हिम्मत खाट सुरिया, विनोद गाँधी, उज्जमशी परमार, इत्यादि कवियों ने दलितों की पीड़ा, संवेदना, वेदना को कहीं संयत तो कहीं आक्रोश के रुप में अपनी कविता से अभिव्यक्ति दी है।

दलपत चौहान की कविता 'अस्पृश्य' में अछूत होने की पीड़ा को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है।

"पाठशाला का प्रथम प्रवेश था साक्षात् प्रलय का
काँपते हाथों से एकहरा नहीं
जलते हुए सहर की
अंगार भूमि सी छाती में
लिखी अपनी जात
तब से मैं
अछूत हूँ अस्पृश्य हूँ, अस्पर्श्य हूँ
गूंजता रहा जीवन में अण–अणु में
सहस्त्र बिच्छुओं का डंक
वेदना का परिचय
हिमालय की दुर्गम
ऊँचाई सा पार किया
वर्ग की देहली को
सबसे दूर–उस कोने के किनारे
शंकर की एकाकी सा मिला
आवास
नेत्र में त्रिपुरारी का तांडव
तभी जन्मा था
और घूमता रहा चारों ओर
फटी हुई थैली में टूटी हुई
पटरी का
महारवजाना लेकर बैठता
थरथराता समय
एक दम खाली आकाश........।"[57]

अछूत बच्चे को पाठशाला में प्रवेश लेते समय होनेवाली अनुभूति का यहाँ तीक्ष्ण रुप से कवि ने चित्रण किया है। दलित बालक को पाठशाला की देहली पार करने से सहज ढंग से तो होना चाहिए किंतु इसके बजाय वह हिमालय चढ़ने जैसी थकान महसूस करता है। कमरे में भी उनको कोने में बैठाया जाता है तब उसका त्रिपुरारी की तरह अक्रोश व्यक्त होता है।

जयंत परमार की 'पोट्रेट' कविता में सफाई कर्मचारी की दयनीय स्थिति एवं उसके सम्पूर्ण जीवन की व्यथा को इस प्रकार चित्रित किया गया है–

"मैं उसकी पसलियाँ ठीक से गिन सकता हूँ
गली कूचों में झाडू लगाकर
घीस गई है उसकी रीढ़ की हड्डी
सुनहरे ख्वाब कचरे के कूड़े में दफन हो गए
फिर भी किसी ने उसे
हाफ नेकेट मेन नहीं कहा
अनगिनत जुल्मों के चिथड़े लग हैं
उसकी जिन्दगी की कमीज पर।"[58]

प्रियंका कल्पित की 'परिपाक' कविता में दलितों के परंपरागत शोषण को चित्रित किया गया है। सदियों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी दलित अत्याचार सहन करते आएँ हैं, परिणामस्वरुप उन पर अत्याचार बढता ही गया है।

"हमारे पूर्वजों ने
पसीना बोया था
बदले में
हमने पाई
गुलामी की फसल
जितना भी सहन किया
बढ़ते गये उतने ही
पीठ पर घाव।"[59]

आज़ादी के 65 वर्ष के पश्चात् भी हमारा समाज दलित मनुष्य को उनकी सही मेहनत के बदले में खलिहान का आधा भाग, दे सका है क्या ? उत्तर है, नहीं। इसलिए ही 'शस्त्र सन्यास' कविता में प्रवीण गढ़वी खलिहान के आधे भाग की मॉग तार्किक दृष्टि से करके, आरक्षण के लाभ को भी अस्वीकार करके मानवीय अधिकार की बात करते हैं। द्रौपदी और चित्रांगदा के पौराणिक पात्रों की मदद से वर्गभेद को गहनरुप से अभिव्यक्त किया है। आरक्षण विरोधियों को यह कविता चुनौती देती है।

"चलो हम शस्त्रों को छोड़े
और गोलमेज परिषद भरें
हमको कोई देश नहीं, वेश नहीं
जमीन जोतने के लिए खेत नहीं, रहने के लिए झोंपड़ी नहीं।
आर्यावर्त के काल से यह आज एक तुमने
घासफूस का तिनका हमारे लिए रहने नहीं दिया।"[60]

इस प्रकार गुजराती दलित कविता में दलितों की वेदना, पीड़ा, उनकी व्यावसायिक प्रवृत्तियों के शब्दचित्र, मनुवादी वर्णव्यवस्था का विरोध, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजकीय असमानता के सामने संघर्ष, अंधश्रद्धा, समानता–समरसता, अस्तित्व और अस्मिता के लिए संघर्ष, न्यायी समाज रचना की अवश्यकता, पुराण पात्र और

पुराणकथाओं का नवीन अर्थघटन इत्यादि देखा जा सकता है। अनुभूति की विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। दलितों की पीड़ा कहीं संयत, तो कहीं विद्रोह के स्वरुप में तो कहीं दोनों के समन्वित रुप में प्रकाशित हुई है। दलित कविता में ग्रामीण बोली का भी विनियोग सशक्त ढ़ंग से हुआ है। अधिकतर कविताएँ मुक्तक है। गीत–गज़ल के द्वारा भी दलित संवेदना का अंकन हुआ है। गुजराती दलित कविता के बारे में जयंत परमार का विचार दृष्टव्य है–

> **"गुजराती दलित कविता जीवन की नयी लय को लेकर आयी है। प्रामाणिक यथार्थ लेकर आयी है, क्रान्ति मूलक अभिव्यक्ति लेकर आयी है, इस कविता में वेदना, यातना, व्यथा है, विद्रोह है, स्वानुभव है और अस्मिता की खोज है। पुराने रुपकों और प्रतीकों की परंपरा को छोड़ा गया है। गिद्ध, नाग, कुत्ता, कौआ, चमगादड़, गरुड़, ऊँट, सांड, छूरी, झाडु, तीसरी बांह, काला सूरज, काला लहूँ जैसे नए प्रतीक दलित कविता में अपनाये हैं। अब तक हिन्दू धर्म ने राम, सीता, राधा वगैरह को ही अवतार और देवता का रुप दिया था, रावण, शंबूक, एकलव्य, कर्ण, गांधारी, तुंगभद्रा जैसे पात्रों के लिए सहानुभूति इस विद्रोह की विशेषता है।"**[61]

<u>दलित कहानीः–</u>

गुजराती में दलित साहित्य का प्रारंभ कविता से हुआ था, किंतु कहानी में दलित संवेदना इतनी यथार्थ रुप में निरुपित हुई है कि आज दलित कहानियाँ मुख्य प्रवाह से सशक्त धारा बन गयी हैं। जोसेफ मेकवान की 'जीवादोरी' '(1956) को प्रथम गुजराती दलित कहानी माना गया है। यह कहानी महागुजरात आंदोलनकाल के अंतर्गत लिखी गई थी। इसके पश्चात् 1959 में 'चाँदनी' में बी. केशरशिवम् की राती रायण की रताश प्रकाशित हुई। ये दोनों कहानियाँ गुजरात में दलित साहित्य की सृजन प्रवृत्ति की शुरुआत से पहले की हैं।

जोसेफ मेकवान, प्रवीण गढवी, बी. केशराशिवम्, दलपत चौहान, हरीश मंगलम् आदि दलित कहानीकारों की पहली पीढ़ी ने सशक्त कहानियाँ दीं, जिनके प्रभाव से कई नवयुवकों के संग्रह प्राप्त हुए हैं जिनमें धरमाभाई श्रीमाली, भी. न. वणकर, दशरथ परमार, राघवजी माधड़, मावजी महेश्वरी, चंद्रबहन श्रीमाली, मौलिक बोरीजा, विठ्ठल श्रीमाली, अमृत मकवाना इत्यादि मुख्य हैं।

आज गुजराती के दलित साहित्य में कई कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जैसे 'गुजराती दलित कहानी' संपादक–मोहन परमार, हरीश मंगलम् 'दलित गुजराती कहानी' सं–अजित ठाकोर, राजेन्द जाडेजा, 'प्रतिनिधि दलित कहानी' सं.–हरीश मंगलम्, 'वणबोटी कहानियाँ' सं.–दलतप चौहान, 'दलित वार्ता सृष्टि' सं.–मोहन परमार, 'वार्तालोक' सं.–हरीश मंगलम्, मधुकान्त कल्पित, पथिक परमार, अरिविंद वेगडा इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त प्रवीण गढवी का 'अंतरव्यथा', हरीश मंगलम् का 'तलब', दलपत चौहान, का मुंझारो, बी. केशरशिवम् का 'राती रायण की रताश', 'चनीबोर' और अन्य कहानियाँ 'जन्मोत्सव', भी. न. वणकर का विलोपन', धरमाभाई श्रीमाली का 'नरक', मौलिक बोरिजा का 'भींस', अमृत मकवाणा का 'लिसोटा' आदि संग्रहों में भी दलित कहानियाँ संग्रहित हुई हैं।

गुजराती दलित कहानियों मे विषय की विविधता देखी जा सकती है। दलितों का शोषण यहाँ सदियों से हो रहा हो, जहाँ दलित होना किसी गुनाह से कम नहीं, जिन्होंने परंपरागत रुप से शोषण सहा हो, जहाँ सवर्ण समाज अपने भव्य अतीत एवं सुनहरे भविष्य की बात कहता हो, किंतु दलित समाज हाथ में झाडू और पीठ पर मशक बँधे हुए इतिहास को दोहराने पर विवश किया जाता है। दलित चाहे गाँव में रहे या शहर में, मजदूर हो या प्रथम श्रेणी का अफसर हो किंतु उन्हें दलित होने का कारण अवहेलना एवं अपमानित होना पड़ता है।

गुजराती दलित कहानियों की विशेषताओं के विषय में मोहन परमार का वक्तव्य ध्यान देने योग्य है–

> **"अस्पृश्यता, विद्रोह, आक्रोश, वेदना, जैसे दलितों के मूलभूत प्रश्नों को दलित कहानी उद्घाटित करती है। जो संवेदना आज तक गुजराती साहित्य में प्रकट नहीं हुई, वे दलित कहानी में उद्घाटित हुई है। इस दृष्टि से भी दलित समाज की बात हो, और दलित परिवेश में ही घटना के आरोह–अवरोह चलते हों, लेकिन दलित चेतना को जागृत करने वाले संवेदनों का अभाव कहानी को दलित कहानी बनने से रोकती है। अर्थात् मूल प्रश्न यह है कि गुजराती साहित्य में दलित कहानी की जो नयी धारा उपस्थित हुई है उसके मूल्यांकन के साधन भी नवीनतम होने चाहिए।"**[62]

ऐसे ही दलितों की पीड़ा को गुजराती कहानियों में देखा जा सकता है। **दलपत चौहान की–**'गंगा माँ', 'कातोर', 'चांल्लो', 'घर' 'रोटलो', 'कातोर', 'दरबार', 'न्याय', 'ना खपे', 'डर', **मोहन परमार की–**'कोह', 'थडी', 'नकलंक', 'हिरवणु', 'लाग', 'रढ', 'आंधु', 'खली', **प्रवीण गढवी की–**'जी साहब', 'सँप', 'जूती पहनने की इच्छा', 'वशीकरण', 'एकलब्य', 'दरुपदी', 'मत्स्यगंधा', **दशरथ परमार की–** 'पाट', 'जाट', 'संधाणी', 'रमत', **हरीश मंगलम् की–** 'दाई', 'प्रेम यही सत्य', 'दलो ऊर्फ दलसिंह', 'पगदंडी', **धरमाभाई श्रीमाली की–** 'वरयात्रा', 'सामैयु', 'भवाई', 'दाझवुंते', 'भात', **बी. केशरशिवम् की–** 'घूरा', 'जेल की रोटी', 'मंकोड़ा', **मावजी महेश्वरी की–** 'पारसो', 'तापणु (अलाव), **उ.दा.राघवजी माधड़ की–** 'छेह', 'सिक्को', **यंशवत वाघेला की–** 'अंध', 'सूर्यनारायण', **जयंती दाफड़ा की–** 'दो एकर जमीन', 'स्वप्नील', **विनोद गाँधी की–** 'प्रसाद', **हसमुख वाघेला की–** 'झाल', **एम.बी.परमार की–** 'ढोल बजा', **अनिल वाघेला की–** 'लोभ', **केशुभाई देसाई की–** 'बोटेली वस', **स्वप्नील मेहता की–** ' कदाच, **प्रवीण सरवैया की–** 'मोहल्ला'(फलीयु), **रमेश वमणि की–** 'मारण', **पुष्पा माधड़ की–** 'गोमती', **मफत ओझा की–** 'नीला कुआँ', **दिनेश परमार की–** 'चक्रवात', **पथिक परमार की–** 'उधाडे पैर', **माय डियर जयु की–** 'प्रवेश', **रमण वाघेला की–** 'धंधो (व्यवसाय), **भी.न वणकर की–** 'विलोपन', **भरत महेता की–** 'तालो' आदि। इन में से अधिकतरर कहानियों में कलात्मकता नहीं है, किंतु दलित वर्ग में से आनेवाले लेखक जैसे–जैसे कला के विषय में अधिक जागृत होते जाएँगे वैसे–वैसे वे शोषण की कहानी को भी मुखर की जगह कलात्मक रुप में प्रस्तुत करेंगे।

गुजराती दलित उपन्यासः—

गुजराती दलित साहित्य में गाँधीयुग (1915—1947) में ईश्वर पेटलीकर की 'कल्पवृक्ष' जैसे अपवादरुप उपन्यास के अतिरिक्त दलित संवेदना को उपन्यास में अधिक अवकाश नहीं मिला। नवें दशक में गुजरात में आरक्षण आंदोलन होने से दलितों पर संकट के बादल घिरने लगे। गोलाणा एवं सांबरडा की घटनाएँ घटी थी, अतः इसका आघात दलित लेखकों पर एवं उनकी संवेदनशीलता पर भी पड़ा था। इसी समय में जोसेफ मेकवान ने 'आंगलियात'(1986) उपन्यास दलित युवक का केन्द्र में रखकर लिखा। इसके बाद 'मारी परणेतर', जोसफ मेकवाना 'मलेक (1999), 'गीध', 'भलभांखलुं', दलपत चौहान 'तिराड', 'चौकी', हरीश मंगलम् की 'शूल' (1995), 'मूल और धूल', बी. केशरशिवम् की 'नेलियुं', 'प्रियतमा' (1995) भाग 1, 2, 'डाया वश की वाडी', मोहन परमार 'अस्तित्व', गणेश आचार्य 'शोष', दक्षा दामोदर, 'शैलबाला', आइ.ए.एस.' (2003), विठ्ठलराय श्रीमाली, 'चींटीने खोरबारा खाया' दिनु भद्रेसरिया, 'दिपावली के दिन', प्रागजी भाम्भी, 'गेबीटींबो' कांतिलाल परमार, 'मैला' मावजी महेश्वरी इत्यादि उपन्यास प्राप्त होते हैं।

1975 के पश्चात् और गैर दलित लेखकों द्वारा रचित लगभग नौ जितने उपन्यास मिलते हैं। जिनमें रामचन्द्र पटेल की 'वराल' (बाष्प) 1979, दिलीप रणपुरा की 'आँसू ना उजास' (19984), चिनुमोदी की 'काला अंग्रेज', जयंत गाड़ीत की 'बदलाती क्षितीज' (1986), 'प्रशमु' (2002), किशोर सिंह सोलंकी की 'मशारी (1980), रघुवीर चौधरी की 'इच्छावर'(1987), मणिलाल ह. पटेल की 'अंधेरा' (1990) और डॉ. प्रदीप पंड्या की 'मंजिल अभी दूर है'(2006)।

इला आरब मेहता की 'राधा' और दर्श की 'कुरुक्षेत्र' में पौराणिक संदर्भों के लिए दलित चेतना अंकित हुई है। यहाँ पौराणिक कथानक, पात्रों को नवीन अर्थघटन के साथ वाचा देने का प्रयत्न किया गया है।

'पारी परणेतर', 'मनखाकि', 'दरार', 'शोष', 'शैलबाला आइ. ए. एस.', दलित नारी चेतना से संबंधित उपन्यास है।

दलित चेतना को निरुपित करने वाले लेखक अपनी विषय वस्तु को सरलकरण कर डालते हैं। जिनमें 'बाष्प'(रामचंद्र पटेल), 'मशारी'(किशोरसिंह सोलंकी) 'नेलियु'(खपरैल), मोहन परमार की गिनती होती है।

'बाष्प', 'चौकी', 'मशारी', 'इच्छावर', 'शोष', 'प्रियतमा', इत्यादि उपन्यासों में समाज जीवन के कठोर सघन वास्तविकता के स्थान पर प्रतिविंबित वास्तव प्रस्तुत हुआ है।

'बदलाती क्षितिज', 'प्रमामुं', 'शूल', 'मूल और धूल', 'मंजिल अभी दूर है', 'शैलबाला आइ.ए.एस.', में उय समय के समाज के प्रश्नों का निरुपण हुआ है। इसके अतिरिक्त अधिकतर उपन्यासों की समय सीमा तानाशही समय की है। दलितों में उभरा हुआ 'ब्राह्मणवाद' कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। 'काला अंग्रेज', 'मलक', 'चौकी', 'दरार', इत्यादि उपन्यासों में जीवन के उत्साह के अतिरिक्त कहीं भी विशेष तौर पर नहीं प्राप्त होत ! लेकिन अधिकांश उपन्यासों में देशज बोली का प्रभाव पड़ा है।

गुजराती दलित नाटक—एकांकीः—

गुजराती दलित साहित्य में दलित नाटक, एकांकी बहुत कम लिखे गए हैं। फिर भी उल्लेखनीय हैं। दलपत चौहान का 'अनार्यावर्त'(2000), में प्रकाशित नाटक है, जिसमें महाभारत की प्रसिद्ध कथा का नवीन अर्थघटन के साथ निरुपण हुआ है। दलपत चौहान की 'हरीफाई' एकांकी संग्रह 2003 में प्रकाशित हुआ, जिसमें 'दीवारो' नामक एकांकी में हिन्दू वर्ण व्यवस्था के कारण सवर्ण और दलित समाज के बीच बनाई गई दीवार की बात है। डॉ. मोहन परमार के 'बहिष्कार' एकांकी संग्रह में से 'बहिष्कार', 'शाप मुक्ति', 'सत्यनारायण की कथा' और 'उदरशूल' एकांकियों की कथावस्तु दलितों पर है।

आत्मकथाः—

गुजराती में बी.केशरशिवम् की 'पूर्ण सत्य' और पी.के.वालेरा की 'थोरके' (थूहरा फूल) आत्मकथा मिलती है। 'पूर्ण सत्य' में लेखक के जन्म, बचपन, शिक्षा से लेकर सरकारी नौकरी से निवृत्ति तक की एवं साहित्यिक योगदान की बात है। प्रस्तुत आत्मकथा का गुजरात सरकार का 'दासी जीवण' पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

रेखाचित्रः—

अभी तक हिन्दी दलित लेखन में भी जो विधा नहीं अपनाई वह गुजराती लेखकों ने अपनाई है, वह है रेखाचित्र। गुजराती में भोगे हुए अनुभावों की अभिव्यक्ति के लिए जोसेफ मेकवान जैसे दलित लेखकों ने रेखाचित्र विधा क उपयोग बड़ी ही सफलता से किया है। जोसेफ मेकवान द्वारा रचित 'व्यथा के वीतक', 'स्नेह के व्यर्थ प्रयन्न', 'मेरी भिल्लु', और 'जनम', 'जलाम', 'मनुष्य होने की यंत्रणा', 'न ये चाँद होगा', 'राम के रखोपे', जैसे रेखाचित्रों के संग्रह प्राप्त होते हैं। जोसेफ मेकवान का 'व्यथा का वीतक' तो सिर्फ दलित साहित्य में ही नहीं, लेकिन संपूर्ण गुजराती साहित्य में अविस्मरणीय संग्रह है। जोसेफ मेकवान के पात्र अपना अलग विशिष्ट व्यक्तित्व रखते हैं। चन्दुमहेरिया द्वारा संपादित 'माडी मुझे सांभरे रे' में दलित रचनाकारों ने अपनी माँ के बारे में लिखे हुए रेखाचित्र हैं, तो दलित शक्ति में दलित रचनाकारों के पिता के बारे में रेखाचित्र प्रकाशित हुए हैं। भोगे हुए यर्थाथ की अनुभव बहुलता भी सहजता से रेखाचित्रों में प्रकट की जा सकी है।

गुजराती दलित साहित्य में नाटक एकांकी आत्मकथा की तरह निबंध क्षेत्र में भी नगण्य जैसा कार्य हुआ है। बी.केशरशिवम् का 'गाय का पड़ाव' निबंध संग्रह मिलता है।

गुजराती दलित विवेचनः—

गुजराती दलित विवेचन क्षेत्र में भी अधिक मात्रा में काम हुआ है। विवेचन ग्रंथों में हरीश मंगलम् का 'संविति', 'विदित' (मोहन परमार के साथ), 'एकवचन', प्रतिध्वनि',' मोहन परमार का 'अणसार' भी. न. वणकर का 'प्रत्यायन', 'अनुसंधान', 'नवोन्मेष', 'पर्याय', दलित साहित्य दलपत चौहान का 'पदचिह्न', भरत मेहता का 'प्रतिबद्ध', पथिक परमार का 'सांप्रत' दलित साहित्य अरविंद वेगड़ा का 'दर्पण', 'गुजराती दलित साहित्यः स्वाध्याय और समीक्षा', संपादक मोहन परमार हरीश मंगलम् प्राप्त होते

हैं। लेकिन मराठी में शरणकुमार लिम्बाले का और हिन्दी में ओमप्रकाश वाल्मिकी का 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' जैसे सिद्धांतलक्षी ग्रंथ गुजराती में नहीं प्राप्त होते।

इस प्रकार की विशेषताओं मर्यादाओं समेत का गुजराती दलित साहित्य को देखते हुए कहा जा सकता है कि, गुजराती साहित्य समृद्ध बना है, क्योंकि उसमें दलित साहित्य का आगमन हुआ है। आज बहिष्कृत भी परिष्कृत हो रहा है। गुजरात साहित्य अकादमी, गुजराती साहित्य परिषद और दिल्ली साहित्य अकादमी द्वारा गुजराती दलित रचनाओं को पुरस्कार प्राप्त हुआ है। हम कल्पना तो ऐसे भविष्य की करते हैं, कि जहाँ समानता, बंधुत्व और स्वतंत्रता को इस प्रकार महत्त्व दिया जाए, जिससे शोषण का अंत लाया जा सके और किसी के द्वारा दलित साहित्य लिखने की आवश्यकता ही न रहे।

1.5. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र

दलित साहित्य यह दलित समाज का विशेष साहित्य है। समाजिक प्रतिबद्ध साहित्य है। यह समाज में समानता, जागृति लाने के लिए लिखा गया है। दलित साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है। और वह मनुष्य को महानता प्रदान करता है। इस प्रकार दलित साहित्य समाजिक चेतना लाने वाला साहित्य कहा जा सकता है। दलित साहित्य तमाम क्षेत्र में दलितत्व को निर्मूल करने के लिए कटिबद्ध है और दूसरी और उसकी अपनी स्वतंत्र मशाल जला रहा है। दलित साहित्य का परंपरागत मूल्यों के समक्ष विद्रोह है। अन्याय के समक्ष आक्रोश है, ऐसे में दलित साहित्य परंपरागत मूल्यों और मापदंडो पर आधारित सौन्दर्य शास्त्रीय समीक्षा को कैसे स्वीकारे ? उसके लिए अलग समीक्षा जरुरी है। वर्तमान समय में जो दलित साहित्य प्रस्तुत है वह अन्याय, यातना और अत्याचार के समक्ष इन्कार, आक्रोश, विद्रोह का साहित्य है। यह आनंद के लिए नहीं जागृति के लिए ही लिखा गया है, इसलिए दलित लेखकों का यह मानना है कि उनके साहित्य की समीक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टि से होनी चाहिए और समाजशास्त्रीय समीक्षा में सौन्दर्य की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों की चर्चा अधिक होना लाजमी है।

सहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है वह जिस वर्ग में जन्म लेता है और जीता है उस वर्ग और समाज का ही उसे अनुभव होता है। इस तरह कला को समझने के लिए कलाकार को समझना पड़ेगा (कार्ल मार्क्स) कलाकार को समझने के लिए वह किस वर्ग का, किस समाज का सदस्य है इतना ही नहीं, इतिहास के किस समय का वह सदस्य है, यह देखना पड़ेगा। साहित्यकार की सामाजिक भूमिका क्याहै ? उसकी परवरिश किस वातावरण में हुई है ? कलाकार की कृति सामाजिक जीवन में क्या भूमिका अढ़ा करती है ? आदि प्रश्नों को समीक्षक को जानना जरुरी है। कलाकार भी समाज का एक सदस्य है। स्वाभाविक रुप से वह समाज में चली आ रही मान्यताओं के अनुसार अपने अनुभव को देखता है। अपने समाज की मान्यताओं, भावनाओं आदि को स्वाभाविक रुप से वह स्वीकार कर लेता है। जीवन परिवर्तनशील है उसी तरह अनुभव का, 'यथार्थ', भी परिवर्तन शील है। दलित साहित्य सामाजिक 'यथार्थ' से संबंधित है। भूखे मनुष्य को रोटी में ही जीवन की यथार्थता समझ में आती है। इस प्रकार "दलित साहित्य यह तीसरी दूनिया का साहित्य है..... तीसरी दूनियाँ का सौन्दर्य–शास्त्र यातना, संघर्ष और स्वप्नों के आधारस्तम्भ के ऊपर खड़ा है।"(अंक 2/96,संपां राजेन्द्र यादव) साहित्य के मानदडं तो संस्कृत साहित्य की परंपरा है। वह अंग्रेजी साहित्य की आयात है जो युगों पुरानी है, परंपरागत रुढ़ बन गई है और दलित साहित्य आधुनिक युग की

उपज है। युग बदलता है उसी के साथ प्रजा की रस–रुचि बदलती है, वैसे ही साहित्य का स्वरुप भी बदलता है साथ–साथ कला की संकल्पनाएँ भी बदलनी चाहिए। साहित्य की अवधारणा अस्थिर और परिवर्तनशील होती है। इस प्रकार युग–युग में कला के मानदंड बदलते हैं वैसे–वैसे शुष्क और जड़ मानदंड़ों द्वारा दलित साहित्य को नकारते रहना अब ज्यादा समय तक चलेगा नहीं।

पिछले कुछ वर्षों में सभी सॅवर्ण लेखकों ने दलित साहित्य के सौन्दर्य को लेकर सवाल उठाया है कि दलित रचनाकार शिल्प और रचना सौन्दर्य की दृष्टि से सफल नहीं है। ठीक यही सवाल बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में अमेरीका में अनेक रचनाकारों की कृतियों को लेकर उठाए गए थे और एडिसन गायलर (जू.) जैसे अश्वेत विचारकों ने 'दि ब्लैक ईस्थोटिक्स' जैसी किताबें लिखीं थी। हिन्दी में भी मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश वाल्मिकी जैसे लेखकों ने दलित साहित्य के स्वायत सौन्दर्यशास्त्र पर विचारात्मक लेखन किया। दलित लेखक का जोर सौन्दर्यबोध पर नहीं जातीय समाजशास्त्र पर रहा है और यही समाजशास्त्रीय विवेक उसके लेखन की पहचान रहा है। दलित रचनाकार का आदर्श कबीर रहे हैं जो सामाजिक व्यवस्था ही नहीं रचना के ढ़ाँचे को भी तोड़ते हैं। इस विषय में डॉ.शरण कुमार लिम्बाले का मानना है कि–

> **"सामाजिक मूल्य ही दलित साहित्य के सौन्दर्य मूल्य हैं और सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम की कल्पना भेदमूलक है। यह सवर्ण समाज के स्वार्थ साधन के लिए की गई थी और वह दलितों को असत् अशिव और असुंदर मानकर चलती है। दलित का शोषण उनके लिए कल्याणकारी है, दलित की कुरुपता उन्हें सुंदर बनाती है और दलित का असत् यानी उसका अपमान–अभाव और विनाश उनके लिए सत्य है। इसलिए डॉ. लिम्बाले ने इसकी व्याख्या बदलने की जरुरत महसूस करते हुए उसे सामाजिक और ऐहिक बनाने पर बल दिया। उन्होंने मनुष्य के अस्तित्व को सत्यम्, उसकी स्वतंत्रता को शिवम् तथा उसकी मनुष्यता को सुंदरम् कहकर व्याख्यापित किया है और समता बंधुत्व और स्वतंत्रता की चर्चा को ही दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की चर्चा माना है। इस प्रकार उन्होंने सौन्दर्यशास्त्र की एक नई परिभाषा देकर उस एक नया मानदण्ड प्रस्तुत किया है।"**[63]

दलित साहित्य आनंद पर आधारित न होकर व्यथा या वेदना पर आधारित है। दलित साहित्य में व्यक्त हुई वेदना और विद्रोह पढ़कर पाठक बेचैन या कुपित हो जाता है न कि आनंदित। दलित साहित्य में सामाजिक विषमता, निरुपता को प्रस्तुत किया जाता है दलित की यातना और अन्याय का निरुपण करता है। इसी के परिणामस्वरुप दलित साहित्य का सौन्दर्य निखरता है। वही दलितों द्वारा सहे जा रहे सदियों की पीडा, संताप यथार्थ रुप में अभिव्यक्ति प्राप्त करते है। इस तरह–

> **"दलित साहित्य के लिए स्वयं के मानदंड निर्धारित नहीं है न ही पूर्व–पश्चिम के कलावाद का कोई आधार ही। दलित साहित्य को केन्द्रबिंन्दु मनुष्य है। आंबेडकर दर्शन दलित साहित्य की गंगोत्री है। स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व की स्थापना का साहित्य अर्थात् दलित साहित्य। इस तरह दलित साहित्य का सौन्दर्य इसमें नहीं है कि उसकी**

> **भाषा कितनी उच्च कोटि की है, बल्कि साहित्य, जीवन के साथ कितना जुड़ा हुआ है, मानवीय संवेदना और समस्याओं को कितना महत्त्व देता है उसी तरह सामाजिक परिवर्तन और विकास में कितना सहायक और उपयोगी है।"**64

इस तरह कहना चाहिए कि हमें सुदंरता की कसौटी बदलनी चाहिए। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्लु पकड़े रहना चाहता था, उसकी दृष्टि महलों की ओर थी। झोंपड़ी और खंडहरों के प्रति वह उपेक्षित था। वह परिधि के बाहर नहीं जा सकता था। उसके लिए सौन्दर्य सुंदर स्त्रियों में था। गरीब और दरिद्र माता में नहीं–जो बच्चे को खेत के किनारे सुलाकर पसीना बहाती है। बिखरे बालों, सूखे होठ और सुखी त्वचा वाले गाल में उसका सौन्दर्य कहाँ प्रवेश कर सकता ?
दलित सौन्दर्यशास्त्र पर विचार करते हुए रमाणिका गुप्ता ने लिखा था–

> **"दलित साहित्य ने नए बिम्ब गढ़, पौराणिक मिथकों की भाषा बदल ड़ाली। नए मिथक बनाए, गौरवान्वित झूठ और आस्था पर चोट की और चमत्कार को तोड़ा। यह वर्तमान साहित्य के लिज–लिजेपन और बासीपन तथा एक रुपी रसवादी प्रणाली से भिन्न है और चमत्कारी कल्पनाओं से बिल्कुल अलग होता है। इसके दायरे में अंधविश्वास, भाग्य, पूर्व–जन्म के कर्म, धर्म तथा भगवान नहीं आते।"**65

ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है–

> **"दलित साहित्य में अनुभवों से उत्पन्न आशय निष्ठा है ही अधिक है। पारम्परिक साहित्य ने जिसे त्याज्य और निषिद्ध माना है, दलित साहित्य ने उसे अपने अनुभवों के आधार पर प्रमुखता दी है। उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के मूल्यांकन के लिए पारम्परिक समीक्षा के मानदण्ड गलत निष्कर्ष देगें।"**66

इस प्रकार दलित साहित्य का मूल्यांकन साहित्य के सदियों पुराने सौन्दर्यशास्त्र के आधार पर नहीं किया जा सकता। अतएव दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र अलग होगा ही। निराला, प्रेमचंद, धूमिल, नागार्जुन आदि कुछ ऐसे साहित्यकार हुए हैं। चूँकि शेष सभी साहित्य उन लोगों द्वारा लिखा गया है जिन्होंने दलितों से मनुष्य का हक छीना और उन्हें साहित्य में भी चर्चा के दायरे से बाहर रखा अगर चर्चा में रखा भी तो घृणा का पात्र बनाकर।

दलितों का सौन्दर्यशास्त्र उनकी रचनात्मकता एवं कृतियों के साथ–साथ ही निर्मित हो रहा है। वे अपने नये प्रतीक नये बिम्ब एंव मिथक गढ़ रहे हैं। इतना ही नहीं वे नये मिथक के साथ–साथ पुराने मिथकों को भी अपने अनुरुप परिभाषित कर रहे हैं, इसलिए रामायण के राम का मर्यादा पुरुषोत्तम रुप का मिथक तोड़कर–उसे शम्बूक हंता, पत्नीत्यक्ता घोषित कर रहे हैं। दलित साहित्य के युधिष्ठिर सत्यवादी धर्मराजा नहीं रहा–वह पत्नी को दाँव पर लगाने वाला जूएबाज है। आज बहादूरी के प्रतीक के रुप में फूलन देवी उभर आई थी, जो बलात्कारियों को सजा देने की हिम्मत रखती थी। आज सावित्री जो अपने पति के प्राण एवं अपने लिए पुत्र और परिवार के लिए धन का वरदान

लेने के लिए निकली थी—मिथकीय पात्र नहीं रही। आज तो सावित्री बाई फूले महान हैं, जिन्होंने सारे विरोधों के बावजूद शिक्षा ग्रहण की और महिलाओं को पढ़ाना शुरु किया। यहाँ तक कि सवर्णों की विधवाओं की अवैध संतान को भी बचाया, जिंदा रखा, पाला–पोसा और पढ़ाया, संतान का वर उन्हें दिया जो इस देवता कही जाने वाली जाति के हाँथों मार दिये जाने वाले थे। उन्होंने विधवाओं को जीने की राह दिखाई, पढ़ाया उन्हें वेश्या बनने से बचाया और दिया एक सामूहिक परिवार के सुख का वरदान। सावित्री के वरदान उसके अपने लिए थे, लेकिन सावित्री बाई फूले का वरदान सामूहिक है। अस्पृश्यता से जिसने उनकी परछाई को भी अछूत बना दिया था,को नकारना है, उसे अपनी पीड़ा और वेदना के माध्यम से अभिव्यक्ति देना है। कुरुपता को मिटाने के वरदान पूरे समाज के लिए थे। इसलिए दलितों का सौन्दर्यशास्त्र अलग होगा ही।

दलित साहित्य की पहचान उसकी 'कला–साधना' से न होकर विषय वस्तु से हुई। शिल्प और कला का सवाल उसके लिए प्राथमिक नहीं है, प्राथमिक है अन्तर्वस्तु। असल में जब भी कोई परिवर्तनकामी साहित्य रचा जाता है तो वह कलात्मकता की ज्यादा परवाह नहीं करता। उसके लिए विषय या विचार सांचे से बाहर रखे जाने का जोखिम उठाकर निर्मित किया जाता है। आम तौर से माना जाता है कि साहित्य मनोरंजन या आनंद के लिए होता है 'काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्'। यहाँ विनोद मनोरंजन के पर्याय के रुप में समझा जाता रहा है। लेकिन, दलित साहित्य में यह मान्यता स्वीकारी नहीं जाती। ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

> **"एक दलित जिस उत्पीड़न को भोगकर दुख, वेदना से साक्षत्कार करता है, वह आनंददायक कैसे हो सकता है ? दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है इसलिए उसकी श्रेष्ठता शब्दजीवी नहीं है, न शाब्दिक चमत्कारों तक सीमित है। अर्थगाम्भीर्य दलितो का स्वीकृत, जीवन मूल्य है, जिस पर दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र टिका है।"**[67]

हमारे देश में साहित्य तो शताब्दियों से लिखा जाता रहा है लेकिन दलितों जीवन संघर्ष को साहित्य में वाणी नहीं दी गई। महाकवियों की अटूट श्रृंखला भी शूद्र और अंत्यज बस्ती को निकट से देखने से बचती रही इसलिए शंबूक जैसे पात्रों को हासिए से बाहर ही रखा गया। जब दलित साहित्यकारों ने 'गौरवशाली और विशाल वाड़ गमय' में अपने को अनुपस्थित पाया तो इस अधूरेपन को पूर्णता देने अर्थात् अपने होने का अहसास उन्हें दिलाने के लिए उन्होंने प्रयत्न किए। अपने वेदनामय जीवन का शब्दों के जरिए प्रकट करने के कारण कई बार दलित साहित्य को सिर्फ वेदना का साहित्य कहा जाता है। वेदना को प्रकट पहले भी साहित्य में किया गया था, किन्तु दलितों की वेदना समाज के पारंपरिक साहित्य से अलग थी। यहाँ वेदना में कुरुपता थी घुटन थी। छटपटाहट थी, अनुसुनी चीख थी जिसे दलित साहित्यकार पारंपरिक साहित्य के शिल्प और कला के माध्यम से प्रकट नहीं करते हैं बल्कि कलात्मकता की चिंता किए बगैर ही अपने लेखन के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति करते हुए पाठकों के हृदय तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। इसमें सौन्दर्य कितना था और कितना नहीं, इसकी उन्हें फिक्र नहीं। दलित साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र के प्रश्नों की खींचतान में पड़कर वे अपने मूल उद्देश्य से भ्रमित नहीं होना चाहते। मूल उद्देश्य के सिद्ध हो जाने पर इस विषय में बाद में भी सोचा जा सकता है।

संदर्भ

1. पाइअसद्दमहण्णवो (प्राकृत शब्दकोश) सं. न्याय व्याकरणातीर्थ पूं. हरगोविन्ददास, टी. शेठ
2. संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश–वामन शिवराम आप्टे, पृ. सं. 451
3. दलित साहित्य ब्राह्मणवाद के खिलाफ खुला विद्रोह–डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर पृ. सं. 1
4. संस्कृत–हिन्दी शब्द कोश–वामन शिवराम आप्टे, पृ. सं. 1026
5. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर,सं.रामचन्द्र वर्मा एवं कोश संस्थान, श्रोत हिन्दी साहित्य में दलित चेतना, सप्तम संस्करण, डॉ.आनंद वास्कर, पृ. सं. 17–18
6. हिन्दी पर्यायवाची कोश डॉ. भोलानाथ तिवारी पृ. सं.. 260
7. उच्चतर–हिन्दी कोश–डॉ.हरदेव बाहरी पृ. सं. 14
8. वही पृ. सं. 46
9. मानक हिन्दी कोश तीसरा खंड सं. रामचंद्र शर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग पृ. सं. 35
10. दलितायन,अवन्तिका प्रसाद मरमट पृ. सं. 4
11. आज की कविता–डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 14
12. पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट,भाग–1 1.2.(1980) पृ. सं. 4
13. बृहद गुजराती कोश–अध्या.के.शास्त्री–खडं पृ. सं. 1129
14. वही पृ. सं. 1124
15. वही पृ. सं. 1356
16. वही पृ. सं. 2150
17. परिषद प्रमुखों के भाषणः गुजराती साहित्य परिषद, 13 वें अधिवेशनः कनैयालाल मुनशी पृ. सं. 515
18. युगवंदनाः जवेरीचंद मेघाणी प्र.आवृत्ति 1935
19. The oxford Hindi- English Dictionary- R. S. mc. Geogor,Page No. 6
20. वही पृ. सं. 956
21. वही पृ. सं .16
22. वही पृ. सं. 06
23. अंग्रेजी–हिन्दी कोश–फादर कामिल बुल्के पृ. सं. 192
24. वही पृ. सं. 808
25. दलितायन–अवंतिका प्रसाद मरमट, पृ. सं. 1
26. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता–डॉ. कालीचरण स्नेही, पृ. सं. 8
27. 'दस्तावेज' अप्रैल–जून,1993
28. दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषा राजमणि शर्मा पृ. सं. 82
29. वही पृ. सं. 83
30. वही पृ. सं. 83
31. दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषाएँ–राजमणि शर्मा पृ. सं. 118
32. वही पृ. सं. 118
33. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ. सं. 14–15
34. प्रलंब पंथ–बिनाकिनी दवे पृ. सं. 2
35. दलित साहित्य आंदोलन सं. डॉ. चन्द्रकुमार नरठे अनु. डॉ. आर.एच.वणकर पृ. सं. 64

36. वही पृ. सं. 64
37. दलित अपना प्राचीन इतिहास जाने और अपनी असलियत पहचाने सं. डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर–हिमायती–दलितों प शोषितों का पक्षिक पत्र नवम्बर 1999 पृ. सं. 1
38. हिन्दी दलित साहित्य एक इतिहास–सुरेशचन्द्र शुक्ल, दलित साहित्य सृजन के संदर्भ सं. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 21–22
39. हिन्दी दलित साहित्य : रचना और विचार सं. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 49
40. वही पृ. सं. 49–50
41. मसीही धर्मनुसार दलित शब्द की व्याख्या डॉ. ए.बी. शिवाजी दलित साहित्य सृजन के संदर्भ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 134–135
42. शिखर की ओर (श्री माता प्रसाद अभिनंदन ग्रंथ) सं. डॉ. एन. सिंह लेख दलित साहित्य श्री माता प्रसाद 'मित्र' पृ. सं. 290–291
43. दलित चेतना : साहित्यिक एवं समाजिक सरोकार सं. रमणिका गुप्ता पृ. सं. 38
44. वही पृ. सं. 88
45. वही पृ. सं. 90
46. वही पृ. सं. 108
47. वही पृ. सं. 109
48. वही पृ. सं. 84
49. शिखर की ओर सं. डॉ. एन. सिंह पृ. सं. 207
50. दलित साहित्य : वार्षिकी 1999 सं. डॉ. जयप्रकाश कदर्म पृ. सं. 281–282
51. 'सुनो ब्राह्मण' मलखान सिंह, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, द्वितीय संस्करण 1997 पृ. सं. 12 'सफेद हाथी' शीर्षक कविता
52. हिन्दी दलित साहित्य में कविता की रचना प्रक्रिया और विचार डॉ. ठाकुर प्रसाद रही से उद्धृत–"दलित साहित्य रचना और विचार" डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 31
53. हिन्दी दलित साहित्य : आस्वाद के धरातलपर–राजेन्द्र नामदेव 'कुमार' "दलित साहित्य रचना और विचार" डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी पृ. सं. 63
54. गुजराती साहित्य में दलित कलम सं. रमणिका गुप्ता भूमिका संपादकीय से
55. प्रतिद्व डॉ. भरत मेहता प्रथम संस्करण 2005, रावत प्रकाशन पृ. सं. 190
56. काला अंग्रेज पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद पृ. सं. 241
57. 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही रचर' सं. विमल थोरात, सूरज बडत्या, प्रकाशन–रावत पब्लिकेशन, जयपुर प्रथम संस्करण 2008 पृ. सं. 177
58. वही पृ. सं. 151–152
59. वही पृ. सं. 148
60. वही पृ. सं. 161
61. युद्धरत आमआदमी गुजराती साहित्य में दलित कलम सं. रमणिका गुप्ता अंक 55 पृ. सं. 207
62. युद्धरत आमआदमी सं. रमणीका गुप्ता अंक 53 पृ. सं. 236
63. दलित सा. का सौन्दर्यशास्त्र सं. डॉ. शरण कुमार लिम्बाले पृ. सं. 20
64. गुजराती दलित साहित्य भी. न. वणकर पृ. सं. 55
65. नयी सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ सं. मुद्राराक्षस पृ. सं. 6
66. वही पृ. सं. 6
67. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ. सं. 50